होली

(होलिकोत्सव पर गवेषणापूर्ण विवेचन)

लेखक

नैष्टिक ब्रह्मचारी महात्मा

ॐ

श्री आनन्दस्वरूपजी महाराज

प्रकाशक

मरुधर साहित्य प्रकाशन मंदिर,

जोधपुर.

प्रथम संस्करण	फाल्गुन	मूल्य
१०००	१९८८	।)

मुद्रक:—

कुँ० सरदारमल थानवी

सुमेर प्रेस, जोधपुर.

प्रकाशक:—

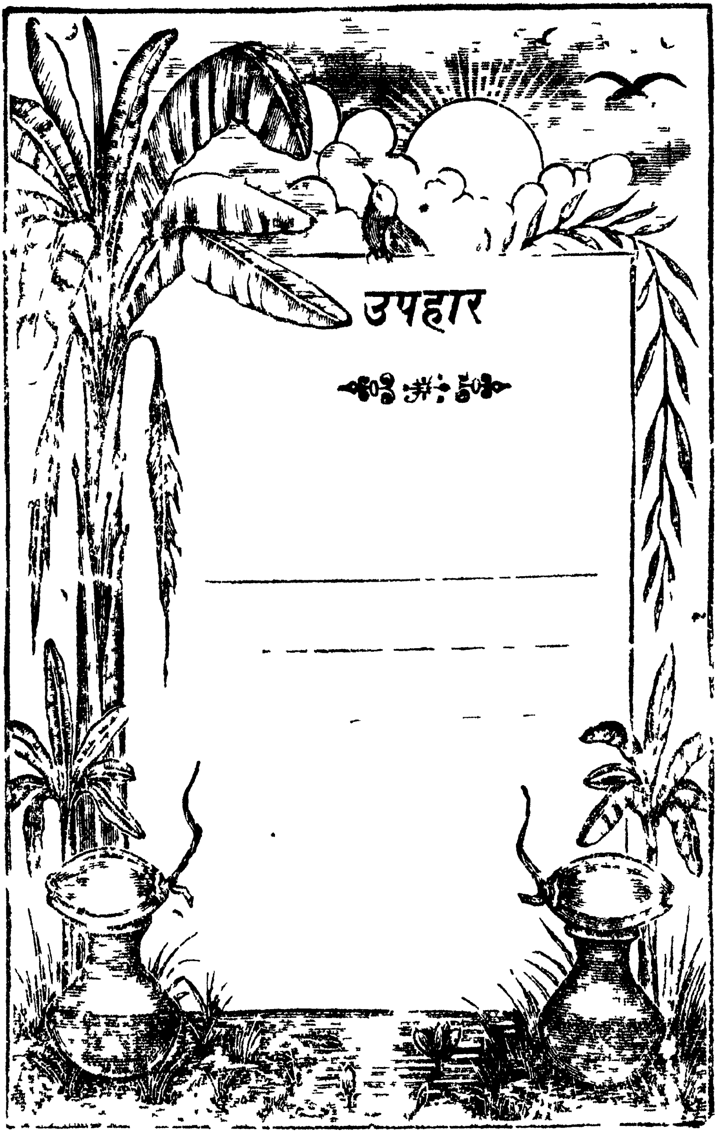
मरुधर साहित्य प्रकाशन मन्दिर

जोधपुर.

विक्रेता:—

व्यास ब्रोदर्स—जोधपुर.

डी. जे. बुकडिपो—जोधपुर.


उपहार

समर्पण

जो कामदेव को नष्ट करने वाले भगवान् शंकर तथा पूतना प्राण हरता भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त हैं

जो

अपनी समस्त शक्तियों द्वारा पवित्र होली पर किये गये दुराचार, कदाचार व व्यभिचार को मिटाकर सदाचार का आसन जमाना चाहते हैं,

जो

हिन्दू समाज के जीवन को पवित्रता भारतीय सभ्यता के रंग में रंग देना चाहते हैं

जो

परम भक्त प्रह्लाद को आदर्श मान अपने बालकों में सत्य, तेज व ओज भर देना चाहते हैं

जो

होली पर अश्लीलता को जड़ से उखाड़ नष्ट कर देना चाहते हैं

उन

देश के नर रत्नों के कर कमलों में

समर्पित

विश्वात्मा ॐ

ॐ

भूमिका

होली पर स्वतन्त्र विचार

यह प्राकृतिक नियम है कि जो जाति, समाज, व राष्ट्र अपने इतिहास को भुला देता है उसका अस्तित्व ही उठ जाता है। किसी महान् लेखक ने कहा है "If you wish to destroy a nation, destroy its history" यदि वह कुछ काल तक जीवित भी रह जावे तो वह परतन्त्रता की जंजीरों से जकड़ा हुआ ही अपने अन्तिमश्वास लेता रहता है।

इतिहास ही जाति, समाज व राष्ट्र की गुण गरिमा का कोष है। जिस जाति समाज व राष्ट्र का इतिहास नहीं है, वह जाति समाज राष्ट्र ही नहीं है और यदि कोई है भी तो उसके लिये संसार में कोई स्थान नहीं। वह मुर्दा है, अपमानित है, घृणित है, त्याज्य है। अत: यदि किसी जाति समाज व राष्ट्र को अपना गौरव तथा, गुण गरिमा, शोभा, मान सभ्यता या यों कहिये कि जीवन ही रखना है तो उसे अपने इतिहास की रक्षा करनी चाहिये।

इतिहास दो प्रकार का है। एक लिखित द्वितीय अलिखित। हमारा लिखित इतिहास है महाभारतादि धर्म शास्त्र और अलिखित है त्योंहार पर्व मेले आदि। आज कल अज्ञान वश हम ने हमारे इन दोनों इतिहासों के भुला दिया है। इसी भूल के कारण हम आज संसार की दृष्टि में नीचे गिर गये और परतन्त्रता के गर्त में पड़े हुवे हैं। हम सभ्य संसार के सामने नत मस्तक हैं और कल की सभ्य मिस मेयो 'मदर इंडिया' जैसी पुस्तक लिख कर हमें लानत देती है। प्रथम तो हमें इस विपली वायु में हमारे इतिहास का अवलोकन करने का अवसर ही नहीं और जो कोई अवलोकन करते भी हैं तो वे अध्ययन शील न होने के कारण उसका वास्तविक अर्थ न समझ कर मन मानी घर जानी कर प्राय: उसका दुरुपयोग ही करते हैं।

उदाहरण स्वरूप भगवान् श्री कृष्ण के चरित्र को ही लीजिये। वे इस वसुंधरा पर 'परित्राणाय साधुनां तथा धर्म संस्थापनार्थ' ही अवतार लेकर आये थे न कि गोपियों के आशिक बन कर; परन्तु इतिहास के घातकों ने उन्हें केवल गोपियों के आशिक बना कर कभी मनियारी के रूप में, कभी धोबिन की प्रतिमा में, कभी मालिन के कलेवर में, कभी नागरा पल्टन में, कभी अन्य किसी ऐसेही रूपमें दिखाया है। उनके वास्तविक रूप में नहीं। यदि इन देश के इतिहास के

शत्रुओं को ज़रा भी देश की भलाई का ध्यान होता और यदि वे थोड़ा सा भी अपना स्वार्थ त्याग करते तो कृष्ण के वास्तविक स्वरूप का उनको ज्ञान होता और वे उस पूर्णावतार परब्रह्म सच्चिदानन्द श्री कृष्ण के गुण गान गाते होते जिसने एक सती के सतीत्व के लिये समस्त कौरव दल का संहार किया, जिसने जरासंध के कारागार से सत्तर हज़ार कुमरिकाओं को मुक्ति दे विधिवत् उनका विवाह कर दिया, जिसने पितृ विरोधी कंस को मार उग्रसेन को साम्राज्य प्रदान किया जिसने गीता जैसे विश्वाकर्षक ज्ञान को विश्व के सन्मुख रखा और भारत को जगद्गुरु की पदवी दिलाई, जिसने सुदामा जैसे दरिद्री मित्र के चरण धोकर चरणामृत लिया और समस्त विश्व को अन्याय पथ से हटा कर न्याय युक्त बनाया।

इसी प्रकार हमारे त्योंहारों को भी बरबाद कर दिया गया है। उदाहरण स्वरूप "होली" को ही लीजिये जिस पर यह पुस्तिका लिखि गई है। इस त्योंहार के पीछे तो हमारे कई भाई ऐसे पड़े हैं कि उन्हें भारत के रोग कीटाणु कहा जावे तो अत्युक्ति नहीं होगी। वास्तव में किसी देश का विनाशकाल आने पर ही उसके ऐसे पुत्र उत्पन्न हुआ करते हैं। उन्होंने तो इस त्योंहार के शास्त्रीय इतिहास तक को बदलने में भी शर्म नहीं की है और उटपटांग श्लोक बना कर तथा उन्हें इधर उधर ठूंस ठास कर महान् पाप के भागी बने हैं।

केवल एक उदाहरण लीजिये—भविष्य पुराण में होलिका विधान में श्लोक इस प्रकार हैं:—

तत्राग्नि विधि वद्‌धुत्वा रक्षोघ्नैर्मंत्र विस्तरैः।
ततः किलकिला शब्दै स्ताल शब्दैर्मनोहरैः।
तमाग्निनिः परिक्रम्य गायंतु च हसंतु च।
जल्पतु स्वैच्छया लोका निःशंका यस्यन्मतम्॥
तेन शब्देन सा पापा होमेन च निराकृता।
अदृष्ट घातैर्डिभानां राक्षसी क्षयमेष्यति॥

इसी कथन को कैसा घृणित रूप दिया है कृपा कर जरा उसे देखें:-

ततः होलिकांत्रिः परिक्रम्यः शब्दै लिंग भगांङ्कितः।
तेन शब्देन सा पापा राक्षसी तृप्ति माप्नुयात॥

और इस श्लोक के आधार पर अश्लीलता का समर्थन करते हैं, शोक ! महान् शोक !!

होली का सीधा सरल अर्थ होम का है और गुजरात प्रान्त में इसे अभीतक हुताशनी कहते हैं। किंतु हमारे ही कुछ भाई जो सदाचार को कोई चीज़ ही नहीं समझते, जो इस समय अश्लीलता के रङ्ग में रङ्ग जाते हैं जो जाति के गौरव की रक्षा का कभी स्वप्न में भी ध्यान नहीं रखते उन्होंने इस त्यौहार को कैसा घृणित रूप दे दिया है।

यदि हमारे ये भाई थोड़ा सा भी अपनी बुद्धि से काम लेते, देश हित का ध्यान रखते, समाज व जाति की सभ्यता ताक में न रखते तो क्या मिस मेयो जैसी—प्रातःकाल में पति करे और सायङ्काल में छोड़ दे और सायंकाल में पति करे और प्रातःकाल में छोड़ दे—ऐसी सभ्यता में पलने वाली तलाकन हमारे भारत के प्रति ऐसे गन्दे उद्गार निकालने की हिम्मत भी करती और यह कहतीं कि भारत का ललनायें सदा गुलाम ही रही हैं? ऐसे ही समाज के शत्रुओं के कारण मिस मेयो जैसी गन्दी नाली में नाक डुबोने वाली औरतों को कुछ मौका मिला है।

हम तो तत्काल ही उसे यह कहते मिस मेयो आंखें होते हुए भी अन्धी न बन देख हमने स्त्रियों को कितना मान दिया था वह केवल इसी मन्त्र से प्रमाणित है—

सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु।

अब तू ही बता यह दिव्य सन्देश तेरे गन्दे दिमागमें समा सकता है!

परन्तु अफसोस हमारे ही भाई भारत की कोख से ही उत्पन्न हुए उसके लाल जब उसकी विभूति को नष्ट करने पर उतारू हों यहां तक कि उसके इतिहास को ही बिगाड़ने लगें तब फिर किसका क्या चारा है? फल स्वरूप उन जैसे सड़ियल

दिमाग वाले जब दुर्गन्धी ही की खोज में आते हैं तो उनको दुगन्धि ही दुर्गन्धि आती है। आप लोगों ने महाभारत पढ़ा होगा तो आपको याद होगा कि एक बार श्री कृष्ण ने दुर्योधन से कहा कि किसी ऐसे मनुष्य को ढूंढ कर लाओ जो सच्चरित्र व सत्यवक्ता हो। दुर्योधन ने ढूंढ ढांढ कर वापिस आकर उत्तर दिया कि 'भगवन् देश भरमें मुझे तो कोई भी पुरुष सत्यवक्ता व सच्चरित्र नहीं मिला' तब श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा कि तुम किसी ऐसे को ढूंढ लाओ जो बुरे चरित्र का हो और असत्यवक्ता हो। युधिष्ठिर ने खोज कर वापिस आकर उत्तर दिया 'भगवन सभी मनुष्य अच्छे चरित्र वाले व सत्यवक्ता हैं कोई भी मुझे असत्यवक्ता नहीं मिला। सच है "जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूर्ति देखी तिन तैसी"

अस्तु अब हम अपने मुख्य विषय पर आते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि हमारे भाइयों को और हम को सद् बुद्धि दे जिससे हम हमारे इतिहास को वास्तविक रूप में रख उसकी रक्षा कर सकें और अपने जीवन को सुधार सकें।

सब कोई इस बात को मानते हैं कि 'होली' हिन्दुओं का एक महत्वशाली राष्ट्रीय त्योंहार है। इस त्योंहार को मनाने का जो ढंग आजकल प्रचलित है, जो कथायें (पौराणिकादि) इस त्योंहार का आधार भूत हैं, जो तत्व इस त्योंहार के पीछे छिपा हुआ है उन्हें देख कर हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि वास्तव में हमारे पूर्वजों की बुद्धि असामान्य थी कि

जिनके मस्तिष्क में ऐसी २ गूढ़ युक्तियें व सारगर्भित जीवन साफल्य के उपाय व रीतियें विकसित होकर सर्व साधारण के हित के लिये प्रकाशित होती थीं और समस्त राष्ट्र की भलाई का साधन बनती थी। होली के त्योंहार का आजकल काया-पलट हो गया है फिर भी हिन्दु संस्कृति के अतीत की झलक जो इस पवित्र त्योंहार के साथ अभी तक दिखलाई देती है केवल उसी से विचार शील पुरुष इस त्योंहार के महत्व का अन्दाजा लगा सकते हैं। इस त्योंहार के सम्बन्ध में जो २ कथायें प्रचलित हैं उन सब का विस्तार सहित विवरण इस पुस्तिका में आप पढ़ेंगे अतः उनको यहां बताना अनावश्यक है। प्रश्न जो हमारे सामने है वह यह है कि जब होली इतना पवित्र, उच्च आदर्श युक्त, महत्व शाली, व आनन्द प्रमोद वर्धक त्योंहार है तो फिर ऐसे उपयोगी अवसर पर अश्लीलता, गंदगी तथा असभ्यता कैसे प्रचलित हुई ? खैर, यदि हुई भी तो ये उचित हैं या अनुचित ? यदि उचित नहीं हैं तो क्या इन्हें त्याग नहीं देना चाहिये ? क्या जङ्ग (काट) की तरह हटा कर जिस प्रकार कोई वस्तु स्वच्छ व उपयोगी बनाई जाती है इसी प्रकार इस त्योंहार पर अपवित्रता व असभ्यता का जो जङ्ग चढ़ गया है उसे हटा कर इसे पवित्र सभ्य व उपयोगी नहीं बनालें ?

इस सम्बन्ध में मत भेद है। कोई कहता है कि अश्लीलता शास्त्रोक्त है, पुराणोक्त है, हिन्दु जाति का आदर्श मय

बनाने का एक उपाय है और है हमारे पूर्वजों की कृति की स्मृति। जो आजकल के नव शिक्षित हैं तथा जो अंग्रेजी के गुलाम हैं वे इस त्योहार को बन्द कर देना चाहते हैं जो सर्वथा अयोग्य है। ऐसे अवसर पर भजन हरिकीर्तनादि असंयुक्त हैं। कुछ कहते हैं कि यह वसन्त ऋतु है इसमें काम की जागृति होती है हृदय हुल्लास से हिलोरें मारता है सब जगह आनन्द ही आनन्द दृष्टि गोचर होता है तो ऐसे समय में प्रकृति के साथ सुख के नाच में हमें भी सम्मिलित होना चाहिये।

जो सुधारक हैं जिनके नाम से ही कई लोगों को चिढ़सी हो गई है वे कहते हैं कि होली पर अश्लीलता का आदर करना हिन्दु जाति के माथे कलंक लगाना है, व्यभिचार की वृद्धि करना है, सभ्य जाति को असभ्य बनाने का उद्योग करना है पूर्वजों का अज्ञानवश अनादर करना है और अन्त में हिन्दु जाति की पूर्व संस्कृति को जिसका ठेका अश्लील वालों ने ले रखा बताते हैं, और जो उसे जीवित रखने का दम भरते हैं मिटा देने का उद्योग करना है। वे रंग, आमोद, प्रमोद व हास्य के खिलाफ़ नहीं हैं परन्तु अश्लीलता व गंदी काय वाहियों को नीची निगाह से देखते हैं और उन्हें हटाने का भरसक प्रयत्न करते हैं।

इस छोटी सी पुस्तिका में महात्मा ॐ ने सिद्धान्तिक रूप से बतलाया है कि होली क्या है? इसका क्या महत्व

है ? और अश्लीलता के पोषक कहाँ गलती पर हैं। वैसे ॐ हमारे गुरु हैं अतः उनके लेख के सम्बन्ध में टीका टिप्पणी करने का हमें अधिकार नहीं परन्तु यहां हम एक शिष्य की हैसियत से नहीं परन्तु अपने व्यक्तित्व के रूप में लिख रहे हैं तथा ॐ की तरफ से हमें ऐसा करने की पूर्ण स्वतन्त्रता ही नहीं अपितु आज्ञा है और उसी आज्ञा को शिरोधार्य कर इस पुस्तक के सम्बन्ध में हम आप से कुछ निवेदन करते हुए होली पर अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट करेंगे।

ॐ महात्मा सच्चे त्यागी महात्मा विद्वान् पाठक तथा अध्ययन शील हैं। आप देशाटन खूब किये हुए हैं एवं आप का अनुभव विशाल है परन्तु आपको हिन्दी लिखने का अभ्यास नहीं है। उस पर तुर्रा यह कि इस पुस्तक की हस्त लिपी को संशोधन करने तथा प्रूफ देखने आदि का भार भी हम जैसे थोड़े पढ़े लिखे अनुभव हीन पर डाल देने के कारण सम्भव है कि इस पुस्तक में भाषा सम्बन्धी त्रुटियें रह गई हैं। अतः पाठकों से निवेदन है कि वे कृपा कर भावों, की ही ओर विशेष ध्यान दें भाषा की ओर नहीं।

गत वर्ष ही हमनें आपसे प्रार्थना की थी कि आप कृपा कर हमारी इस होली वाली उपरोक्त समस्या को हल करें। आपनें कृपा कर यह पुस्तिका गत वर्ष ही लिखकर हमें सौंपदी परन्तु अनेक कारणों से हम इसे गत वर्ष प्रकाशित

नहीं कर सके। उस समय होली के उत्सव पर जब सर प्रताप हाई स्कूल में कुछ बोलने का अवसर मिला था तब हमने इस के आधार पर होली के महत्व पर कुछ प्रकाश डाला था।

अस्तु ! इस पुस्तक के अवलोकन करने पर आपको मालुम होगा कि होली मनाने का क्या सिद्धान्त था और अब बदल कर क्या होगया है। सिद्धांतिक रूप से होली महान् पवित्र व महत्व का हिन्दू त्योहार है और इस शुभ अवसर पर जहां अश्लीलता, द्वेष, बुरे स्वभाव, पापादिकों का त्याग करना चाहिये वहां उनको अपनाना मूर्खता है।

अब व्यवहारिक रूप से लीजिये। हमें यह मानना पड़ेगा कि वसन्त में प्रकृति की छटा निराली होती है, वृक्ष फल, पुष्प, लताएँ विकसित होती हैं, तालाब नदी नाले आदि स्वच्छ जल से भरे होते हैं न अधिक गर्मी न अधिक शर्दी होती है। नया अन्न प्राप्त होता है। सर्वत्र आनन्द मंगल दृष्टि गोचर होते हैं। सारांश वसन्त अपनी सब विभूतियों को लेकर आता है और प्रकृति देवी के इस आनन्द में बाल वृद्ध नवयुवक व युवतियें मग्न हो जाते हैं और स्वाभाविक रूप से उनका मन हँसी, खुशी, प्रेममयी क्रीड़ा व आनन्द की ओर दौड़ता है और वे उनमें तल्लीन होजाते हैं। यही कारण है कि हमारे प्राकृत रहस्य के ज्ञाता विज्ञ पूर्वजों ने प्रकृति के सौन्दर्य के समय होलिकोत्सव की सृष्टि कर मानव-समाज को प्राकृतिक आनन्द लूँटने का अवसर दिया। ईश्वर प्रदत्त

सदसद् विवेक बुद्धि द्वारा होली के साम्प्रत रूप पर यदि विचार करें तो हम दावे के साथ कह सकते हैं कि होली का आरम्भिक रूप वही हरगिज नहीं हो सकता जो आज कल है। हमारे पूर्वज हरगिज ऐसे गँवार नहीं थे कि जो ऐसे गाली गलौज, अश्लीलता, कीचड़ आदि से संयुक्त एक राष्ट्रीय त्योंहार को रचते और उसे इतना महत्त्व देते। उनका यही मत हो सकता था अपितु निश्चय रूपेण था कि ऐसे मङ्गलमय सौन्दर्ययुक्त प्रकृति की अनुपम निराली छिटकती हुई छटा के आनन्द में मानव समाज लोकोत्तर पवित्र आनन्द अनुभव करे। इसीलिये गुलाब, केसर, इतर, अन्य सुगन्धित द्रव्य छिड़कना, जलविहार करना, अपने प्रेमी मित्रों से बन्धुओं से प्रेममय हास्य करना, सुन्दर गायन गाना, भांति २ के बाजे बजाना, नाचना, हरिकीर्तन करना, भक्त प्रह्लादादि की आदर्शमय कथाओं का सुनना व सुनाना, स्वच्छ वस्त्र पहिनना अपनी अपनी टोलियें बना कर अपने प्रेमीजनों के यहाँ तथा चौराहे में गाते हुवे जाना आदि बातों का उन्होंने विधान निकाला। इसी के साथ साथ जो इस ऋतु के पश्चात् ही आने वाले अनिष्ट से जिनका कि उन्हें पहिले ही से ज्ञान होजाता था बचाने के लिये कैसे सरल सुन्दर व उपयुक्त उपाय निकाले हैं जरा कृपा कर उनकी ओर ध्यान दीजियेगा।

इस सम्बन्ध में हम होली के त्योंहार पर होने वाले व्यवहारों व कृत्यों की एक तालिका देते हैं और उनमें कौनसे कौन से गुण हैं उनको बतलाते हैं:—

१	घर व आँगन की सफाई	स्वास्थ्य के लिये हितकर, सुखदायक आनन्दवर्धक।
२	भ्रमण	'वसन्ते भ्रमणं पथ्य'
३	गायन	आनन्ददायक, प्रेमवर्धक, फेफड़ों के लिये हितकर तथा उन को मजबूत बनाने वाला।
४	वाद्य	गायन को सरस यनाने के लिये। आनन्ददायक।
५	हास्य	हृदय की कली २ खोलना। आमोद प्रमोद वर्धक।
६	सौन्दर्य वर्णन	प्रकृति की छटा का अध्ययन करने की क्षमता, सुन्दरता को समझने की बुद्धि, प्राकृतिक सौन्दर्य का रहस्य समझने की शक्ति, मानव हृदय को विशाल, सुन्दर व उच्च बनाने का साधन।
७	होलीदाह (स्थान २ पर)	यज्ञ, प्रचण्ड अग्निसेचन से रोग कीटाणुओं का नाश, सुगन्धित पदार्थों के हवन से वायु शुद्ध, होले (नवान्न) होमने से देवताओं की तृप्ति।
८	होली की भस्म	मर्दन करने से त्वचा के रोग कीटाणु नष्ट, स्वास्थ्य वर्धक।

९	गुलाल, रङ्ग	प्रेम-आनन्द-सुख आमोद प्रमोद दायक।
१०	जल विहार	स्वास्थ्य वर्धक आनन्ददायक।
११	हरि कीर्तन	वर्षारम्भ के पहिले समष्टीरूप से ईश प्रार्थना-मङ्गलप्रद।
१२	बालकों की स्वतन्त्रता, आदर पूजन	बालकों को वीरता की शिक्षा, रक्षा का विधान।
१३	होली की अग्नि लाकर घर के चूल्हे में अग्नि प्रज्वलित करना	पवित्र अग्नि देवता की आराधना द्वारा वर्ष भर की शुभाकांक्षा।
१४	ऊँच नीच के भावोंका अभाव	चारों वर्णों में प्रेम व एकता का बीजारोपण तथा हिंदू-संगठन।

तथा मङ्गलकारी, आनन्दायक, सुखकारी, प्रेमवर्धक सभ्यतासूचक, स्वास्थ्य हितकर, शरीर रक्षक, व्यायाम खेल नाच गाना आदि भिन्न भिन्न कार्यवाहियाँ।

अब आप ही बतलाइये कि ऐसे सुन्दर विधान निकालने वाले क्या अश्लीलता व भन्धगी के समर्थक हो सकते थे? कदापि नहीं।

अब हम उन गंदी कार्यवाही का संक्षेप में वर्णन करते हैं जो इसमें आघुसी हैं और उनके अवगुण बतलाते हैं और अच्छी और बुरी का निर्णय करना हमारे प्रेमी पाठकों पर ही छोड़ते हैं ।

होली पर होने वाली गंधी कार्यवाहियें

१	चुंगी (दाग) वसूल करना	गरीबों को कष्ट, निर्दयता, चोरी व लाग डाटकी बुरी आदत ।
२	गदहे पर चढ़ना	चोट का डर, असभ्यता सूचक सवारी, जानवर पर निर्दयता, गदहे के मालिक को दुःख ।
३	धूल राख कीचड़ डालना	असभ्यता, आंखों व स्वास्थ्य को हानि, लड़ाई होने की सम्भावना ।
४	दीवारों पर अश्लील शब्द लिखना।	घरों की सुन्दरता व सफाई का सत्यानाश करना, सदाचार का ह्रास स्थायी होने से मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव—असभ्यता ।
५	अश्लील छापें लगाना	कपड़े बिगड़ना, अश्लीलता सूचक वैमनस्य का कारण।

६	अमल, भङ्ग, शराब नशीली वस्तुओं का उपयोग	फिजूल पैसे की बर्बादी, स्वास्थ्य को तिलांजलि, मस्तिष्क को हानि, सभ्यता का नाश।
७	स्त्रियों का रास्ता रोकना अश्लील बकना	महान् असभ्यता सूचक, व्यभिचार का दिग्दर्शन
८	अश्लील मूर्तियों का (इलोजी) का पूजन	हिन्दू-जाति के मथे कलङ्क का टीका।
९	मुँह काले करना	असभ्यता सूचक। मनुष्य होकर आसुरी आकृति बनाना
१०	अश्लील गायन ,, साहित्य का प्रचार	समाज से सदाचार हटाकर व्यभिचार की वृद्धि करने का साधन।

यह अटल नियम है कि जब किसी भी जाति समाज व राष्ट्र में अज्ञानता रूपी पिशाचिनी प्रवेश कर जाती है तब उसका पवित्र से पवित्र, सुन्दर से सुन्दर तथा उपयोगी से उपयोगी व्यवहार भी अपवित्र, दूषण युक्त व अहित कर हुए बिना नहीं रहते। इसी नियमानुसार अज्ञानता के कारण शनै शनै होली के वर्तमान के दूषण कालान्तर में आ घुसे और इसे अपवित्रता से ढ़ँक दिया। केवल इसी त्योंहार को ही क्यों इस हिन्दु जाति के गौरव को ही नष्ट कर डाला।

इसलिये हम लोगों का कर्त्तव्य है कि हम हमारे अज्ञानान्धकार से बाहर आवें और बुद्धि से काम लें। हमारा यह कर्तव्य है कि हम होली के त्योंहार को पवित्र बना कर इसे राष्ट्रीय त्योंहार का रूप दे हमारे गौरव को बढ़ावें।

अतः आईये हम लोग विचार करें कि हमें होली कैसे मनानी चाहिये? हम उपर निवेदन कर चुके हैं कि होली अर्थात् वसन्तोत्सव महान् पवित्र शिक्षाप्रद, तथा मानव समाज के लिये अत्यन्त हितकर त्योंहार है। अतः हमारा कर्तव्य है कि हम इसी त्योंहार के सिद्धन्तानुसार काय कर जिस उद्देश्य से इस त्योहार की रचना की गई उसकी पूर्ति करने का प्रयत्न करें।

प्रथम तो यह त्योंहार वसन्त में आता है। वसन्त ऋतुओं का राजा है इसी लिये इसे ऋतुराज कहते है इस समय प्रकृति की शोभा अति रमणीय व सुखदाई होती है प्रकृति अपने सब गुणों से अलङ्कृत होकर दिव्य रूप धारण कर आती है अतः हमें भी किस प्रकार इस प्राकृतिक आनन्द को लूटना चाहिये तथा अपने स्वाभाविक गुणों को प्रकाशित कर अपने जीवन को दिव्य बनाने का प्रयत्न करना चाहिये वह स्वय न कहकर हमारे ही विचारों से सहमत एक अन्य लेखक महोदय के शब्दों में कह देते हैं।

"जब प्रकृति वसुन्धरा को रङ्गीली छबीली बना पुष्प, रङ्ग तथा सुगन्ध से सजादेता है तब फिर रङ्ग, गुलाल, केसर और

सुगन्धित रसों से हमें भी ओत प्रोत होकर उसका, अनुसरण करना ही चाहिये। जब मनोहर मकरन्द हवा के सुहावने सुगन्धित झोंकों में प्रकृति देवी पर वर्षण हो रहा है तब हमारे बन्धु बांधवों पर अबीर गुलाब जल, (केवड़ा आदि) के सुगंधित फुहारे पड़ने ही चाहिये। जब कोयल कूँक कर बन उपबनों को गुँजाती और भौंरे पुष्पों पर मधुर सुरीला गान करते हैं तब राष्ट्रीय फाग और देश भक्ति से परिपूर्ण प्रेममय हृदय को पिघला कर नवनीत करदेने वाले कबीर (भजन गायन) बोल कर गान का श्रुति मधुर रस स्वादन लेना ही उचित है। जब प्रकृति पतझड़ के भूर २ शब्दों द्वारा नव वर्ष का आह्वान करती हैं और वृक्ष लताओं में नवीन २ पत्तों की सुन्दर शोभा की प्रतीक्षा करती है तब हमें डफ, मजीरे और ढ़ोलक, चग आदि के मधुर शब्दों के बीच में वाद्य की झनकार से द्वेष और फूट को भड़ा कर नये प्रेम (नये उत्साह) और नव वर्ष में एकता के दृढ़ सूत्र में बन्ध कर वर्ष भर आनन्द मय बीतने की सुन्दर मनोकामना द्वारा राह देखनी ही चाहिये।

होली दहन में जैसे हम लकड़ी, ईंधन, कूड़ा-कर्कट आदि डाल कर सब भस्म कर देते हैं उसी प्रकार हमें चाहिये कि हम वर्ष भर के अपने मन मुटाव के कूड़ा कर्कट और प्रसङ्ग वश द्वेष भाव से आये शुत्रुता के भावों को एकता की भूमि में एकत्र कर अहङ्कार और अभिमान की अग्नि से उन्हें क्षार कर दें। और जैसे हम परम ज्योतिमय अग्नि को-पवित्र

पावक को नवीन अग्नि कह कर अपने गृह आलोकित करने के लिये होलिका दहन स्थान से सङ्ग ले जाते हैं वैसे ही हम प्रेम, सद्भाव, सहानुभूति, उदारता, नियम शीलता और बन्धुत्व की सात्विक भावनाओं से हृदय आलोकित कर साथ ले जावें। आगे होली का रङ्ग विद्या सद्बुद्धि, स्वदेशानुराग, निज स्वत्व और गौरव रक्षण तथा स्वदेश व समाज सेवा का पक्का केशरियाँ रङ्ग दृढ़ सङ्कल्प एवम् विश्वास-फिटकरी डाल कर एक दूसरे के श्वेत वस्त्र रूपी शुद्ध हृदय पर इस प्रकार छिड़का जाय कि वस्त्र छिन्न भिन्न और पुराना तथा शिथिल होने पर भी इस रङ्ग का चटकीलापन न घटे। आशय यह कि होली की सृष्टि जिस भावना से प्रेरित होकर हुई थी वह नष्ट न होने पावे। इस समय सब गले आ लगें अपने बुरे अरमानों को बाहर निकाल फेंकें। सभी प्रेममयी रङ्ग धारा में बह चलें। पवित्र गान से सब को प्रफुल्लित और आच्छादित करें।

आज हमें भक्त शिरोमणि प्रह्लाद का आदर्श मान, अपने शरीर से मैलापन हटा उसे स्वच्छ बनावें, हरिकीर्तन के सुन्दर २ भजन गावें और भक्त प्रह्लाद के गुण गान करें।

होली के वास्तविक महत्व को बतलाने तथा विद्यार्थी भाइयों व अन्य बन्धुओं को उन अश्लीलता प्रेमी बन्धुओं से जो अश्लीलता को अपने पूर्वजों की रीति व धार्मिक बतलाते हैं सावधान करने के आसय से ही यह पुस्तिका लिखी गई है

और यदि इसके द्वारा होली के महत्व पर थोड़ा बहुत भी प्रकाश पड़ा और यदि थोड़े से बन्धुओं ने भी अश्लीलता से मुँह मोड़ा तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे। ईश्वर करे वह दिन जल्दी आवे कि जब हम सभी एक सूत्र में बन्ध कर होली के त्योंहार को परम पवित्र व आदर्श मय बनालें।

शिवरात्री

सं०-१९८८

जोधपुर.

व्यास सूर्यराज रघुनाथ शर्मा
बी. ए.
विशारद
मन्त्री—
मरुधर साहित्य प्रकाशन मन्दिर

लेखक की नवयुवकों से एक बात

अहो ! वह देखो प्रकृति मनुष्यत्व, मनुष्यत्व पुकार रही है। ईश्वर पुरुषत्व पुरुषत्व का बोध करा रहा है। इन दोनों का समन्वय सभ्यता, सभ्यता गर्जन कर रहा है। इन्हें मनुष्यता में पशुता व सभ्यता में असभ्यता नहीं सुहाती। अहो ! आ गये—इनके प्रिय तत्व क्रान्ति, जागृति, शोध प्रायश्चित्—जो मनुष्यत्व से पशुत्व एवं असभ्यता को खाकर ही दम लेंगे। नवयुवको ! वह देखो क्रान्ति के होम—कुण्ड की लपटें तुमको अपनी ओर आकर्षित कर रही हैं; जागृति तुम्हें अपने अङ्क में बिठाने की चेष्टा कर रही है; शोध तुमको शोध शोध कह कर बोधन कर रहा है—उधर देखो वह प्रायश्चित कह रहा है कि आओ प्रिय नवयुवको आओ और मुझ में अपनी कायरता, अकर्मण्यता, निर्बलता बुज़दिली आदि पापों को धो डालो, जिससे मेरी तो सुधा शान्त होगी और तुम्हारे दोष व पाप नाश होंगे। यदि भला चाहते हो तो कूद पड़ो और अपने किये कुकर्मों का प्रायश्चित द्वारा नाश करा कर भविष्य को सुखी बनाओ। नहीं तो स्मरण रहे तुम्हारा मनुष्यत्व, तुम्हारी शक्तियें, तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारी सभ्यता सब समाप्त होने वाली है। इन सबका जल्दी ही दिवाला निकलने वाला है। अतः इस भावी अनिष्ट से बचना हो तो उठो, जागो। ईश्वर के नियमों का पालन करो और उनकी अवहेलना करना छोड़ दो।

उत्तिष्ठत, जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

उठो, जगो, बोध को प्राप्त होकर विजय की गरदन पर माला पहिनो।

आपका शुभाकांक्षी

ॐ आनन्दस्वरूप

होली

वसन्त एवं होली—

ॐ विश्व में कोई ऐसा राष्ट्र नहीं है जिसमें त्योहार न हो, यहां तक कि प्रत्येक जाति व समाज के त्योहार हैं। सत्य बात तो यह है कि जैसे व्यक्ति का जीवन प्राणों पर ही निर्भर है उसी प्रकार राष्ट्र, समाज व जाति का जीवन त्योहारों पर निर्भर है। जैसे प्राणी प्राण के बिना मर जाते हैं वैसे ही त्योहारों के बिना राष्ट्र समाज व जाति मर जाते हैं क्योंकि त्योहारों में ही किसी विशेष राष्ट्र समाज व जाति की पूर्व संस्कृति, इतिहास, सभ्यतादि भरे रहते हैं। यदि किसी राष्ट्र समाज व जाति की सभ्यता व संस्कृति का इतिहास जानना हो तो उसके त्यौहारों ही को जान लो। बस उनमें ही उस राष्ट्र समाज व जाति का कुल इतिहास भरा हुआ होता है। सभ्य राष्ट्र समाज व जाति के त्योहार सभ्य होते हैं और असभ्य के असभ्य। यही कारण है कि एक राष्ट्र समाज व जाति के त्योहार दूसरी राष्ट्र समाज व जाति के त्योहारों से कुछ न कुछ भिन्नता रखते ही हैं।

यदि विचार करके देखा जाय तो उन त्योहारों के नाम संस्करण भी उनकी सभ्यता से कुछ न कुछ सम्बन्ध रखते ही

हैं। भारतीय त्योहारों में से ही कुछ लीजिये जैसे **दीपावली** दीपों की अवली (माला) प्रकाश की माला पहिनाने वाला त्योहार, **विजया दशमी**—विजय की माला पहिनाने वाला त्योहार; और **श्रावणी**—वेद शास्त्र के रहस्यों को सुनाने वाला त्योहार। इसी प्रकार **होली**—समस्त यज्ञों की विधि व उपयोगिता बतलाने वाला त्योहार।

इन अगले पृष्ठों में ॐ इस होली का यत्किञ्चित् शास्त्रीय इतिहास रखेगा और आशा है पाठक इसे पढ़ कर होली का गौरव, तथा भारतीय सभ्यता व संस्कृति का महत्व समझेंगे और आजकल इसी त्यौहार के नाम पर जो पापाचार व व्यभिचार फैला कर इस पवित्र त्यौहार को अपवित्र व कलङ्कित करते हैं उनको मुँह तोड़ उत्तर देंगे।

वसन्त और वेद—

मन्त्र—वसन्तो मस्यासी मज्यं।

ॐ इस मन्त्र से बिल्कुल स्पष्ट है कि वसन्त इस विश्व में घी की धारा लेकर उपस्थित होता है। जिस प्रकार घी शक्ति व बल को बढ़ाया करता है वैसे ही वसन्त ऋतु भी गुप्त व प्रकट रूप से शक्ति व बल की अवश्यमेव वृद्धि करता है। इस मन्त्र से मालूम होता है कि वसन्त ऋतु में मनुष्यों

को वही कार्य व साधन करने चाहिये जिससे शरीर में शक्ति व बल का सञ्चार होने लगे और सचमुच ही वसन्त हम को घी के समान ही फलदायक हो, जिससे कि हम अपने वेद मन्त्र को प्रमाणित कर दिखला सकें और विश्व को बतला दें कि वसन्त सचमुच ही घृत है।

मन्त्र—वसन्तो ·वसुभिस्सह ।

वसन्त ऋतु सुगन्धि को लेकर आता है। इन दोनों मन्त्रों से यह साबित है कि वसन्त ऋतु विश्व में सुगन्धि व बल देने वाली है। सुगन्धि एवं बल का विकाश ही मनुष्य को अमर व मृत्युञ्जय बनाने का साधन है। यही अर्थ महा मृत्युञ्जय मन्त्र का होता है कि उस त्रयम्बक शिव के यजन से ही मनुष्य पके हुए फल की सदृश मृत्यु से छूट कर सुगंधि युक्त पुष्टी का वर्धक होता है। ॐ के अनुभव में यही कारण वसन्त में शिव-रात्रि मनाने का है। इस शिव और वसन्त के सम्बन्ध से निश्चय होता है कि वसन्त ही शिव शक्ति का स्वरूप और मृत्यु रहित आनन्द मय जीवन की दाता है और इसीलिये वेद ने इसे विश्व पोषक एवं आयु स्वरूप "घृत" नाम प्रदान किया है। इस वसन्त रूप घृत से ही हमारी बुद्धि का भी विकाश हुआ करता है। भगवान् वेद कहते हैं—

(मन्त्र) उपहरेद्गिरीणों संगमेच नदीनों विप्रोधियः प्रजायतः ।

अर्थ:- पर्वतों की चोटियों पर तथा नदियों के संगमों पर ही ब्राह्मणों की बुद्धि का विकाश हुआ करता था।

इन्हीं स्थानों पर मनुष्य को वसन्त के तात्विक स्वरूप का बोध हुआ करता है क्योंकि यही स्थान बुद्धि बढ़ानेके लिये प्रकृति देवी के विश्व विद्यालय हैं। इन्हीं कारणों से ब्राह्मण कुमार का यज्ञोपवीत संस्कार बसन्त में करना कहा है (देखो मन्त्र-ब्राह्मणो वसन्ते उपवीत) यही हमारे वसन्त का वैदिक स्वरूप है जिसमें ब्राह्मण कुमार उपनीत होकर पहाड़ों की चोटियों और नदियों के सङ्गमों पर बुद्धि बढ़ाने जाया करते थे जिसके मध्य भाग का नाम होली है। इसी दिन ब्रह्मचारी अपना विद्या प्रारम्भिक होम किया करता था। होली का अर्थ ही होम है। अब भी क्या यह बात मानने में सन्देह है कि ऐसे पवित्र समय को अश्लील शब्दों द्वारा कलुषित करना महा नीचता व मूर्खता है? समय कहता है कि तुम ब्रह्मचारी बनो विद्योपार्जन करो, वेद मन्त्रों का उच्चारण कर आकाश तक को ध्वनित कर दो, प्रकृति देवी ने जो तुम्हारे लिये साधन एकत्रित किये हैं उनका उपभोग कर अपने आपको बलशाली, वैभव सम्पन्न, विद्वान तथा सौरभयुक्त बनाओ; अफसोस, उसकी जगह आप व्यभिचार का ताण्डव नृत्य करते हैं, अश्लीलता के नशे में झूमने लगते हैं, गन्दगी के अथाह समुद्र में गोते लगा कर उसे आनन्द समझते हैं, भला इससे भी कहीं अधिक मूर्खता, पतन व पथभ्रष्टता हो सकती है? शायद

ही। वसन्त ऋतु का विमल आकाश, शुद्ध मन्द २ वायु, यहां तक कि तुम्हारी निर्मल सदसदविवेक बुद्धि (अगर तुमने इस धरोहर की रक्षा की है और सदा इसका आदर किया है) भी यही कह रही है तुम्हारा यह कार्य नीच है और पथ भ्रष्टता का एक बढ़िया नमूना है। यदि तुम अपने पूर्वजों का ध्यान करो तो तुम्हें मालूम होगा कि वे तुम्हारे इन कुकर्मों पर आँसु बहा रहे हैं और धिक्कारते हैं।

वसन्त और ब्राह्मण तथा गृह्य सूत्र—

ॐ ब्राह्मण और गृह्य सूत्रों को देखने से पता लगता है कि वसन्त ऋतु एक विश्व व्यापी महोत्सव की ऋतु है। इस उत्सव का नाम नवान्नेष्टि * और वर्षान्तेष्टि × यज्ञ होता था और उसकी पूर्णाहुति के दिवस को होली कहते थे जो पूर्णिमा हो को हुआ करती थी।

---

* नवान्नेष्टि—वर्ष भर में दो बार होती है—एक कार्तिक में और दूसरी फाल्गुन में।

× वर्षान्तेष्टि—वर्षान्तेष्टि का उत्सव वर्ष में केवल एक ही बार फाल्गुन में ही होता है।

नोट—उपरोक्त दोनों यज्ञों का विस्तृत वर्णन ब्राह्मण ग्रंथों व गृह्य सूत्रों में देखो।

वर्षान्तेष्टि का अर्थ है वर्ष का अन्त सूचक यज्ञ नवान्नेष्टि का अर्थ है नवीन धान का यज्ञ। दोनों का तात्पर्य यह है कि वर्ष समाप्ति पर ईश्वर का स्मरण करना कि जिसकी कृपा से एक वर्ष आनन्द सहित समाप्त हुआ और आगामी वर्ष उज्वल व आनन्ददायक हो। जिसके लिये ईश्वर से प्रार्थना करना और इसी उद्देश्य से इतना बड़ा भारी यज्ञ विशेष समारोह के साथ मनाया जाता था।

नवान्नेष्टि का तात्पर्य यह है कि नवीन धान उपजने पर प्रथम उसे यज्ञ द्वारा ईश्वर को अर्पण करना अपना धर्म है। इसके अतिरिक्त नये धान, (छोले आदि) की उपज के उपलक्ष में देवताओं को मनाना तथा मिल कर आनन्दोत्सव करना कृषि प्रधान भारत में ही विशेष रूप से न हो तो कहां हो ? इस यज्ञ का प्रारम्भ वसन्त पञ्चमी को हुआ करता था। वसंतपञ्चमी सरस्वती का जन्म दिवस है। मालूम होता है कि इसी ऋतु में हमारे पूर्वज विद्या प्रचार के सब साधनों को अनुकूल देखकर यज्ञ द्वारा विद्या प्रचार करते थे और यज्ञ की समाप्ति फाल्गुन सुदि पूर्णिमा को होती थी जिसको कि होली, होम की तिथि-पूर्णाहुति का दिवस मानते थे। इसी ऋतु में न अधिक गरमी होती है न शरदी। धान पकने के दिन होने से खानपान की अनुकूलता व सुभीता सब जगह मिल ही जाया करते हैं (होले, छोले आदि) अतः इस ऋतु को ही विद्या प्रचार व उपदेश के लिये उपयुक्त समझना हमारे

पूर्वजों की बुद्धि की प्रखरता का नमूना है। इसी के साथ २ अन्न की क्या उपयोगिता है ? अन्न का कैसे उपयोग करना चाहिये, इसके भक्षण करने की क्या विधि है तथा भिन्न २ धान के उपयोग से भिन्न २ मनुष्य की प्रवृत्तियों पर क्या २ असर पड़ता है आदि विशेष बातों का ज्ञान जनता में फैलाने के लिये भी यह ऋतु बड़ी उपयोगी साबित हुई थी। इसीलिये यज्ञ द्वारा नवान्न को प्रथम भगवान् के अर्पण करना, तत्पश्चात् वर्ष भरके लिये संग्रह करना वे लोग अपना कर्तव्य समझते थे। इसी एक मुख्य कारण को लेकर वे लोग प्रांत २ में भ्रमण करते थे, आनन्दोत्सव मनाते थे और लोगों को उपदेश देते थे कि अन्न को यज्ञ द्वारा श्रीभगवान् को अर्पण करने के पश्चात् खाने से वह तुम्हें शुभ फल, अपार शक्ति व सुवृत्तियें देगा और इसके विपरीत करने से वही अन्न तुम्हारे शरीर में रोग उत्पन्न करेगा और तुम्हें पाप प्रवृत्तियों की ओर ले जावेगा। वर्ष के कुशलता पूर्वक समाप्त होने के साधन, वर्ष भर के विघ्नों की शांति के उपाय, तथा भविष्य में अपने जीवन का क्या कार्यक्रम होना चाहिये यह सभी समस्त जनता को बतला दिया करते थे। यही इस वसंत ऋतु के यज्ञ-होली का महत्व था। वसंत का स्वागत कर वे अपार सुख, शांति व शक्ति लाभ करते थे और आगामी वर्ष के लिये वे प्रसन्नचित्त हो सदा तैयार रहते थे। आज वही पवित्र भाव उठ जाने के कारण हम दर दर ठोकर खा रहे हैं और प्रत्येक वर्ष हमारे लिये भय, महामारी, रोग, शोक व अकर्मण्यता का दाता प्रमाणित होता है।

गीता और वसन्त—

ॐ गीता में भगवान श्री कृष्णचन्द्र वसन्त ऋतु को साक्षात् अपना स्वरूप ही बताते हैं जैसे कि (ऋतु नाम्र कुसुमाकरं) ऋतुओं में मैं सुगन्धि हूँ; पुष्पों को बनाने वाली वसन्त ऋतु हूँ। इस कथन मात्र से वसन्त ऋतु तो भगवान् के ही वचनों से भगवान् का स्वरूप हो गई है इसमें कुछ भी सन्देह करने की बात नहीं रह गई। जब वसन्त ऋतु मात्र ही भगवान् का स्वरूप देह हो गई तो फिर होली को भगवान् का हृदय कहने में क्या आपत्ति है? जैसे मनुष्य का मध्य भाग हृदय होता है तैसे ही वसन्त का मध्य भाग भगवान् का हृदय हो जाता है। अब शङ्का यह हो जाती है कि जब वसन्त ऋतु भगवान् का शरीर है, होली उसका हृदय है फिर यहां होली जलाने का क्या अर्थ है। इसका उत्तर बिलकुल निश्चित है कि अपने हृदयों में भगवान् की ज्योति को जलावो अर्थात् जाग्रत करो इसी कारण से योग-शास्त्र में वसन्त ऋतु को योगाभ्यास के लिये सर्व श्रेष्ठ माना है और यह सब अनुभव से भी सिद्ध है कि अधिकतर साधकों को इस ऋतु में ही सफलता मिला करती है। अतः होली जलाने का अर्थ आत्मा की ज्योति जलाने का ही संकेत है। अस्तु यौगिक बात को छोड़ दीजिये सीधा साधा भगवान् के वचनों पर ही विश्वास कीजिये; जब वह वसन्त को स्वयं ही अपना स्वरूप कह रहे हैं तो फिर होली उनका हृदय हो ही

जाती है। यदि यह कथन सत्य है और आप इसको सत्य मानते हैं तो फिर आप वसन्त ऋतु में अश्लील गाना व व्यभिचार फैलाना अपना धर्म कैसे समझते हैं ? भला क्या आपकी गन्धि क्रियायें क्या भगवान का अनादर नहीं करतीं? हम यदि यह कह दें कि आपके पतन का कारण आप ही के ये कुछ कुकर्म हैं तो क्या हम सत्य नहीं कहते ?

आयुर्वेद और वसन्त—

हमने कितने कामान्ध व निर्बुद्धि पुरुषों को कहते हुए सुना है कि भारतीय चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से वसन्त ऋतु में रक्त संचालन के लिए अश्लील अवश्य बोलना चाहिये। हा भारत ! आज तेरी क्या दशा है ? तेरी ही सन्तान आज क्यों ऐसी जड़ तथा बुद्धि शून्य हो गई है ? भला क्या रक्त सञ्चालन के लिये अश्लीलता की आवश्यकता है ? वाहरे वाह ! बलिहारि है इन मनुष्य के नाम को कलंकित करने वालों की। हम ऐसे पुरुषों के लिये आयुर्वेद के केवल एक दो वाक्य उद्धृत करते हैं, जिनसे वसन्त ऋतु में करने के कार्यों का स्पष्टीकरण हो जाता है। इनको पढ़कर स्वयं पाठकवृन्द ही अपने आप न्याय कर सकेंगे कि वसन्त में वीर्य को भ्रष्ट करने वाले अश्लील गायन गाने चाहियें या रक्त और वीर्य को शुद्ध करने वाले व्यायाम करने चाहिये, भ्रमण करना चाहिये तथा आमोद आनन्दोत्सव मनाना चाहिये।

महर्षि सुश्रुताचार्य क्या कहते हैं—

श्लोक—व्यायामो ही सदा पथ्यं, वलीनो स्निग्ध भोजीनाम्
रूक्ष शीते वसन्ते च, तेषां पथ्यतम स्मृत।

स्निग्ध भोजन करने वाले और बलवान पुरुषों को व्यायाम सदा ही पथ्य अर्थात् आरोग्य प्रद है, परन्तु शीतकाल और वसन्त ऋतु में तो व्यायाम निर्बल से भी निबल पुरुषों को पथ्य से भी महा पथ्य हो जाती है। आयुर्वेद की दृष्टि से पथ्य एक अचूक औषधि है और पथ्यतम का अर्थ एक महौषधि है। अब पाठक ही सोचें और कहें कि आयुर्वेद व्यायाम करने की आज्ञा देता है या अश्लील व गन्धे गीत गाकर दुराचार व व्यभिचार फैलाने की? सवासेर की ककड़ी और सवामण का बीज वाली बात सत्य नहीं मानी जा सक्ती। सायद ही कोई बुद्धिमान् पुरुप यह स्वीकार करे कि अश्लील बोलने से रक्त सञ्चालन होकर उसकी शुद्धि होती है, अपितु मात्र बुद्धि वाले पुरुष यही कहेंगे कि अश्लील बोलने से तथा उसी प्रकार की चेष्टाऐं करने से रक्त व वीर्य भ्रष्ट एवं दूषित हो जाया करते हैं और कभी २ तो इसको परिणाम में कुष्ठ तक होता देखा गया है। इसी रक्त एवं वीर्य की भ्रष्ट एवं दूपित अवस्था को सुधारने के लिये आयुर्वेद ने वसन्त ऋतु में व्यायाम को सर्व श्रेष्ठ पथ्य से भी महा पथ्य कहा है और जैसे वसन्त ऋतु में व्यायाम को पथ्यतम कहा है। वैसे ही

व्यायाम की सफलता के लिये ब्रह्मचर्य पथ्यादि पथ्यतर कहा है। इस व्यायाम और ब्रह्मचर्य के तात्विक सम्बन्ध को तो एक साधारण से भी साधारण पुरुष कह दिया करता है कि "भाई साहब व्यायाम करो तो लंगोट बन्ध रखना"। यह बात बिलकुल अनुभव सिद्ध सत्य है, चाहे जो कर देखे। वसन्त ऋतु की सुगन्धित वायु में धीमे धीमे व्यायाम करके महान से भी महान वीर्य दोष मिटा दिया जा सकता है; भ्रष्ट से भी भ्रष्ट शुद्ध हो सकता है। ऐसे व्यायाम बताने के लिये ही तो आयुर्वेद ने कहा है कि " वसन्ते भ्रमणं पथ्यं अथवा वह्नि सेवनं " वसन्त ऋतु में भ्रमण करना और अग्नि सेवन करना ही एक उत्तम औषधि है।

वसन्त ऋतु में भ्रमण का महत्व—

वसन्त ऋतु में भ्रमण एक सञ्जीवनी है, इस ऋतु में वायु नाना प्रकार की सुगन्धि बूटियों से औषधि लेकर आया करती है। ऋगवेद में कहा है कि—" आवात: वायु भेषजं " हे वायु तू आती हुई अपनी औषधि लेती आ। यह वायु आती हुई नाना प्रकार की ईश्वरीय औषधियें लेकर आती है अत: प्रत्येक सुखी जीवन के इच्छुक पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह वसन्त ऋतु की वायु में प्रातः काल भ्रमण अवश्यमेव किया करे। इससे सैकड़ों तरह के गुप्त व

प्रकट रोग नाश हो जाया करते हैं। वसन्त ऋतु में आठ नौ बजे तक का शौर स्नान अमृत जीवन प्रदान किया करता है। मेरे अनुभव में वह्नि शब्द का अर्थ भी यही होना चाहिये। यदि क्षया रोगी वसन्त ऋतु में आसमानी पुष्पों की माला पहिन-कर उर्ध्व बाहु पादांगुष्ट आसन कर पांच मिनट भी सूर्य की रश्मियों को अपने हृदय पर लेयेगा तो उसका क्षय रोग एक ही वसन्त में अवश्यमेव नाश होगा। ॐ के विचार से तो बद्री फल (बेर) मोगरी. मूली की फलियें, छूहारे, शाख, नारियल की गिरी आदि की मालायें बच्चों को पहनने में भी कोई आयुर्वेदिक रहस्य अवश्य छिपा हुवा है। इसी तरह के प्रत्येक भेदों से वसन्त ऋतु कितने ही रोगों को मिटा सकता है। सायद हमारे पूर्वज आयुर्वेदाचार्यों ने किसी आसाध्य रोगी को होली के होम द्वारा ही रोग युक्त किया हो क्योंकि होली के होम में अग्नि का ताप और भ्रमण दोनों एक ही साथ हो जाते हैं जिससे रक्त में उष्णता बहुत शीघ्र आ सक्ती है जो जीवन और आरोग्यता के लिये अति उपयोगी प्रतीत होती है (एक सन्त ने जल में डूब मरे व्यक्ति को अपनी धूनी की गर्मी पहुँचा कर जिन्दा कर दिया था) जिसका अनुभव लेना चिकित्सकों का कार्य है और इसी विधि में वह्नी और भ्रमण का महत्व हुवा करता है। अस्तु, चाहे कुछ भी क्यों न हो आयुर्वेद ने वसन्त ऋतु में व्यायाम ही माना है न कि अश्लील बोलना। आयुर्वेद से वसन्त में अश्लील सिद्ध करना

अपने आयुर्वेदाचार्यों का महान अपराध करना है और अपने सदाचारी महाऋषियों को व्यभिचारी सिद्ध करके पाप से भी बड़े भारी पाप का भगी बनना है।

पुराण व वसन्तोत्सव—

पुराणों को देखने से होली के कई कारण मिलते हैं जिनको यहां पाठकों के सन्मुख रखना है। आशा है पाठक इनको ध्यान से पढ़ेंगे। नं० (१) में उस होली को लेता हूँ जिसमें भगवान शंकर ने कामदेव को भस्म किया था। इस होली का नाम कामदहन यज्ञ होता है। इसे काम विदग्धा यज्ञ का यह अर्थ नहीं है कि महादेव बाबा ने सृष्टि के बीज स्वरूप कामदेव को ही दग्ध कर दिया था अपितु इसका अर्थ यह है कि भगवान् शंकर ने सृष्टि की उत्पति में जो दोष दुराचार व्यभिचार आदि आगये थे जिनसे सृष्टि निर्बल, कायर, हतोत्साह, अकर्मण्य व दीर्घसूत्री होने लगी थी उन दोषों को ही फूक दिया था। सृष्टि के उत्पादक काम को किसी शास्त्र ने बुरा नहीं माना है अपितु उसको सेवन करना भगवान् के नियम रूप उसके स्वरूप का सेवन करना है जैसे कि (प्रजनश्चास्मि कन्दर्प) प्रजा उत्पादक कामदेव मैं हूं (धर्मा विरुद्धो भूतेषु, कामोस्मि भरतर्षभः) हे अर्जुन

धर्म के अनुसार काम का बर्ताव करना मेरे स्वरूप की उपासना करना है क्योंकि धार्मिक काम मैं ही हूँ । इस कथन से सिद्ध ही होगया कि सन्तानोत्पादक क्रिया का नाम वह काम नहीं है जिनको महादेव बाबा ने भस्म किया था। इसका नाम तो ईश्वर की सृजन क्रिया है। वह काम जिसका नाश हुआ था वह तो व्यभिचार और दुराचार ही था । इस व्यभिचार रूप दुराचार ही को फूंक कर बुड्ढे बाबा ने होली मनाई थी। भावार्थ यह है कि इस दिन महादेवजी ने गृहस्थ सम्बन्धी दोषों को फूंक कर उनको निर्दोष सदाचार युक्त बनाया था परन्तु आज हमारे भारत के दुर्भाग्य से उसको हम फिर व्यभिचार आदि दोषों से युक्त बना रहे हैं। जिस दिन शिवशंकर ने कामदेव को भस्मशाह करके छोड़ा था उस दिन ही हम उसका फिर से सृजन कर रहे हैं। जिस दिन शंकरजी ने व्यभिचार दुराचार का सत्यानाश किया था हम उस दिन ही फिर से उसका धूमधाम से प्रचार कर रहे हैं। जिस दिन साक्षात् ईश्वर ने अपने नियम बनाकर आठ प्रकार के मैथुन रहित ब्रह्मचर्य पूर्वक अपने स्वरूप की उपासना करने की हमको विधि बतायी थी। (जैसे कि "ऋतु भार्यां मुपेयात्" आदि वाक्यों से ऋतुकाल पर्यन्त ही अपनी भार्या का सन्तान उत्पत्ति के हेतु नियम पूर्वक सेवन करो कहा था) परन्तु आश्चर्य है कि आज हम परमात्मा के नियम के विरुद्ध आचरण कर रहे हैं। जिस दिन हम को "मातृवत् परदारेषु" की

शिक्षा मिली थी वह भी वृद्ध बाबा महादेव द्वारा; शोक ! उस दिन ही हम समस्त स्त्री समाज को मन वाणी काया से व्यभिचार की दृष्टि से देख रहे हैं। इस पर भी तुर्रा यह है कि यह शास्त्रीय आज्ञा है। उफ ! कैसी अनर्थकारी भयानक पापप्रद परिभाषा है 'आप गलन्दे वाणिये साथे गाले जाट' की कहावत सोलह आने चरितार्थ कर दिखाई है।

दूसरे नम्बर की होली वीर बालक सत्याग्रही प्रहलाद की है यह विद्यार्थियों के आन्दोलन की विजय तिथि है। इस दिन बीर बालक प्रह्लाद ने एक महान् अजय आसुरी सम्राज्य पर विजय प्राप्त की थी। यद्यपि यह कथा सब पर विदित है तथापि इसका सारांश देदेना पाठकों के लिमे लाभ दायक समझता हूँ।

कथा—

हिरण्यकश्प ने अपने साम्राज्य में यह घोषणा करदी कि (न दातव्यं न होतव्यं) न दान करो न होम करो, न जप करो, न पाठ करो, न पूजा करो, न ध्यान करो। बस, यदि कुछ कर्तव्य है तो एक मेरा नाम ही है। इसके विरुद्ध यदि किसी ने कुछ भी किया हो उसको उचित दण्ड ही मिलेगा। यह पितृ आज्ञा सुनते ही बालक प्रह्लाद का हृदय विदीर्ण हो गया। उसका रक्त धार्मिक तत्व की अग्नि से उबल पड़ा

और उस शुद्ध, शान्त, धार्मिक, वीर बालक प्रह्लाद के रोम रोम में क्रान्ति मचादी, जिसने अन्त में वीर बालक प्रह्लाद को कार्यक्षेत्र में ढकेल ही दिया। कार्यक्षेत्र में आते ही इस वीर बालक ने पितृ-आज्ञा के विरुद्ध विद्यार्थी समाज में घोषित कर दिया कि मित्रो! यह शरीर एक दिन भस्मी की ढेरी में परिवर्तन होने वाला है। जीव आत्मा का ईश्वर से भिन्न कोई अस्तित्व ही नहीं है फिर इस अनित्य वस्तु के ममत्व में उस सत्य को भुला देना और वह भी किसी भय से; इससे बढ़ कर कायरता और अकर्मण्यता ही क्या है?

आओ! इस अनित्य शरीर का ममत्व छोड़ो और उस के स्वरूप उस में ही (ईश्वर में) मिला दो। यदि इस मांस के पिण्ड शरीर पर कोई हिंसक जन्तु टूट पड़े तो उसे इसे खाने दो। तुम अपने ध्येयों को ॐ में लय करते जावो। देखो फिर तुम्हारे दुःखों का कैसे अन्त होता जाता है, और तुम कैसे सुख में गोते लगाते हो। इस सत्यनिष्ठ बालक के सत्य उपदेश ने विद्यार्थियों की काया पलट कर दी और उनका असत्य शरीर मोह छूट कर सत्य आत्मा में जा मिला। उनके मुँह से अपने आप ही निकलने लगा कि भस्म से बना हुवा शरीर तो अन्त में भस्म ही है तुम अपने निज स्वरूप ॐ को भजो। उनके हृदयों में ॐ था, उनके श्वांस परश्वांस में ॐ था, उनकी वाणी में ॐ था, उनके रोम रोम में ॐ था, उनके कण्ठों पर ॐ था, उनके वक्षों पर ॐ था, उनकी भौंहों पर

ओ३म् था उनकी क्रान्ति में ओ३म् था, उनकी शान्ति में ओ३म् था, कहां तक कहें उनके रोने में ओ३म् था उनके हँसने में ओ३म् था, उनके गाने में ओ३म् था, उनके चिल्लाने में ओ३म् था, बस सब ओ३म् मन्त्र के मतवाले थे। बस अब क्या था इन वीर बांके रणवीरों का दैनिक जलूस निकलने लगा जिससे मात्र जीवधारियों के हृदयों में धार्मिक क्रान्ति की आग जलने लगी। इधर इस आन्दोलन को देख हिरण्यकश्यप ने भी अपना आसुरी दमन चक्र चलाना शुरू किया। उसने इस रणबांकुरे को पर्वतों से गिराया, बिष पिलाया, सर्पों से कटवाया, खूनी शेरों से नुचवाया परन्तु सत्य को कौन मिटा सकता है? जो सत्य को मिटाना चाहता है वह या तो स्वयं मिट जाता है या स्वयं सत्य होकर सत्य में मिल जाता है। जब हिरण्यकश्यप के पूर्वोक्त सब प्रयोग निष्फल हो गये तब उसको इस सत्यनिष्ठ वीर बालक पर अपना अन्तिम प्रयोग भी चलाना पड़ा। वह प्रयोग अग्नि दण्ड था जिसमें कोई भी वस्तु नहीं बच सकती। पर यहां तो "नैनं दहति पावक" ही सिद्ध हुवा। प्रह्लाद अग्नि दण्ड को पाकर वही रहा जो कुछ वह पहिले था। उस को अग्नि जला नहीं सका अपितु उसको और भी शुद्ध बना गया। प्रातःकाल होते ही आकाश बोल उठा कि सत्य की ही जय होती है। वायु गूंज गूंज कह कहता था कि 'अवश्य मेव' भगवान् भास्कर अपनी कलाओं से साक्षी देते हुए कह रहे थे 'सत्य कहा'। पृथ्वी के मात्र परिमाणु गूंज रहे थे 'सत्य-मेव' कहां तक कहें दुष्ट हिरण्यकश्यप का हृदयेश्वर भी कह

रहा था 'सत्य'। इस दैवी वाक् समूह को सुनते ही समस्त धार्मिक समाज (जो शोक सागर में डूब गया था) जाग उठा। सब फौरन ही प्रह्लाद के दण्ड स्थान की ओर दौड़ पड़े मानो उन्हें प्रकृति कह रही थी कि तुम अपने नेता की विजयपताका जा देखो। वहां पहुँचते ही उनके मुखों से भी अचानक ही निकल पड़ा कि होली है। वीर प्रह्लाद की जय होली है। दुष्ट शासन की अन्त्येष्ठि होली है। इसी विजय लिपि का नाम वीर बालक प्रह्लाद की जीत होली है। इसके उपलक्ष में जो आनन्दोत्सव माना था उसी का नाम होलिकोत्सव है। इस उत्सव की पालकी में बालक वीर प्रह्लाद था, शंख आदि बाजे थे, मङ्गल और विजय सूचक शब्द बोले और गाये जाते थे पूर्वोक्त मन्त्र से अंकित पताका भी उड़ रही थी। आज के उत्सव में डरपोक से डरपोक और कायर से भी कायर जी हजूर से भी जी हजूर आ मिले थे। यह उत्सव क्या था भारत की वैदिक धार्मिक तथा राजनैतिक स्वतन्त्रता का जन्म दिन था। अजय आसूरी बल की अन्त्येष्ठि तिथि थी। आज धार्मिक समाज में आनन्द था खुशी थी, हास्य था, मोद था, तृप्ति थी, साहस था धैर्य था, शान्ति थी और क्रान्ति थी। इधर असुरी समाज में लज्जा थी, ग्लानि थी, दुख था, खेद था, क्लान्ति थी, रोदन था, सुस्ति थी, पराजय थी। हम हसते थे वे रोते थे। हमारे लिये होली नररक्षक यज्ञ का मृत्युञ्जय होम कुण्ड था। उनके लिये होली एक भयानक श्मशान भूमि थी। हमारी विजय के विमानों में बैठे हुवे देवता

देख रहे थे। गन्धर्व गा रहे थे। इन्द्र के नन्दन बन के माली पुष्प वर्षा रहे थे। भगवान् श्री कृष्ण वीर बालक प्रह्लाद को अपने स्वरूप की पदवी प्रदान कर रहे थे—" प्रह्लाद श्रास्मि दैत्यानाम " दैत्यों में प्रह्लाद मैं हूं। परन्तु शोक है आज हम को कि जिस दिन भगवान् एक असुर बालक को उसके आचार पर मुग्ध होकर उसको अपना रूप प्रदान कर रहे थे, उसी दिन हम आसूरी भेष भूषा बना कर प्रह्लाद के आदर्श को काला कर मिटा रहे हैं, जिस दिन हम वीर विजयी बालक प्रह्लाद के साथ " तेजोसी तेज मयी देही " 'बलं असि बल मयं देही' के परम मङ्गल गीत गा रहे थे, हाय ! आज उसी बालक शिरोमणि की स्मृति में उसी पवित्र दिन को महान् अमङ्गल मय अश्लील गीत गा रहे हैं। ऊफ ! वह भी अपनी माताओं एवं बहिनों के सन्मुख। जिस दिन असुर व्यभिचार से उनके सतीत्व की रक्षा हुई थी उसी महान् पवित्र दिनको हम व्यभिचार की मूर्ति बन कर घूमते हैं। अब पाठक ही कहें कि क्या इसका ही नाम वीर बालक भक्तशिरोमण राजर्षि प्रह्लाद की होली है—कदापि नहीं ? यह तो आसूरी सम्प्रदाय का एक भयानक उत्पात है जिसके मिटाने के लिये वीर बालक प्रह्लाद ने अग्नि दण्ड जैसे भयानक दण्ड को स्वीकार किया था।

ॐ तीसरे नम्बर की होली पूतना प्राण हरण है। इस में दूध पीते हुवे बच्चे के योगिक बल का परिचय है। इतनी अवस्था में ऐसी बड़ी दानवी के मारने का सौभाग्य सिवाय

हिन्दूधर्म के अन्य किसी धर्म ने प्राप्त नहीं किया है। कथा इस प्रकार है—एक दिन कंस की ...गुप्तचरी पूतना भगवान श्री कृष्णचन्द्र को मारने की इच्छा से अपनी कुचा का दुग्ध पिलाने लगी जिसमें विष लगा ... था परन्तु इस गुप्त कपट के ज्ञाता विष को अमृत ... वाले भगवान श्रीकृष्णचन्द्र दूध के साथ ही ... प्राणों को पीने लगे। इस प्राण विनाशक बालक की ल...से बचने के लिये पूतना आकाश में दौड़ी परन्तु इस बालक के योगिक बल के आगे वह अधिक नहीं दौड़ सकी अन्त में जीव रहित होकर वह यशोदा के आंगन में आपड़ी और हमारे बाल स्वरूप भगवान् इसके वक्षस्थल पर हास्य मुद्रा से खेलते हुये से मिले। यशोदाजी ने भगवान् को बड़े कौतुहल से उठाया और उसके कुशल क्षेम के लिये गोधूलि स्नान तथा गौ पूंछ से मार्जन किया। बुढ़ापे के बालक का इस भयानक उत्पात से बाल बाल बचने के उपलक्ष में बड़े २ पुण्यदान किये। अनाथों को भोजन वस्त्र दिये। इसके आनन्दोत्सवों में गोप गोपियों से मङ्गल गीत गवाये गये। गोपी यशोदा को और गोप नन्दबाबा को बधाइयां दे रहे थे। इसका अनुभव वेही स्त्री पुरुष जान सकते हैं जिनका वृद्धावस्था का बालक ऐसी ही भयानक रोगावस्था से या अन्य संकट से बच जाया करता है। इस पूतना के दाह से ही होली जलाने का अभिप्राय है जो सायंकाल में ही जलाई गई थी। भगवान् श्रीकृष्ण न जाने इन फगुओं की आसुरी वृत्तिरूपी पूतना के कब प्राण पीवेंगे ?

चौथे नम्बर की होली भविष्य पुराण के उत्तरपर्व अध्याय ३२ में आती है जिसके आधार पर ये रूढ़ीवाद के पंडित अश्लीलता का समर्थन किया करते हैं। वह कथा यों है—एक माली नाम का राक्षस था जिसकी बेटी का नाम दुण्ढा था और उसने तपस्या करके महादेवजी से मृत्यु रहित होने का वर प्राप्त किया था।

महादेव बाबा ने इसको बच्चों से भय कह कर बर दे दिया। इसने मृत्यु रहित होने की खुशीमें घमण्ड से कहा कि बाबाजी बच्चे तो मेरा भोजन ही हैं (बाबा इसकी बात सुनकर बड़े खुश हुवे और मनमें कहा कि इस दुष्टा को अभी यह भी होश नहीं कि कभी २ भोजन भी मृत्यु का कारण होजाया करता है। बस अब क्या था? यह तो लगी समाज के बच्चों को खाने। इसने एक तरह का हत्याकाण्ड ही मचा दिया। इस हत्याकाण्ड से त्रसित होकर जनता अपने शासक रघु-राजा के दरबार में जाकर कूकी और कहा कि राजन् किसी उपाय से हमारे बच्चों को इस दुष्टा से बचाइये। राजा प्रजा का अर्थ नाश सुन कर एक वार स्वयं त्रस्त हो उठा और उस समय ही अपने कुल गुरू महर्षि वशिष्ठ को बुला कर कहा कि देव कोई ऐसा प्रयोग बताइये जिससे इस दुष्टा का नाश होकर प्रजा के बच्चों की रक्षा हो। वशिष्ठजी ने बहुत कुछ सोच विचार कर एक बाल रक्षक यज्ञ का विधान निकाल ही दिया। इस

की बिधि यह है कि फाल्गुन की पूर्णिमा के दिन सायंकाल में किसी लम्बे चौड़े मैदान में लकड़ी छाने (उपलादि) आदि का एक बड़ा भारी ढ़ेर लगाकर उसमें अग्नि प्रज्वलित कर मात्र जातियों के बालक काष्ठ के अस्त्र शस्त्र धारण करके रक्षोगत मन्त्रों को बोलते हुवे छूवा छूत के भेद भाव को छोड़ कर होम करें और मात्र स्त्री पुरुष भी अड्डा अड्डा कह कर उस होम कुण्ड की प्रदक्षिणा करें। इस हमले को सुन कर तब वह पापीनि बच्चों पर आ पड़े तब ही सब बच्चे यदि उस पर छूआछूत का भाव छोड़ कर टूट पड़ेंगे तो वह अवश्य-मेव मरेगी। इसके पश्चात् बच्चों को गुड़ खिलाकर उनसे आनन्द दायक हास्य रस के गीत गँवाते हुवे बड़ी सावधानी से रात्री भर जागरण करवावे। प्रातः काल स्नान आदि करके सब अपने अपने धन्धों में लग जावे। यह सब किया गया जिससे उस पापीनी का नाश हुआ और प्रजा में शान्ति की स्थापना हुई। इसी होली के नाम आज ये अश्लीलता के तांडव नृत्य किये जा रहे हैं, क्योंकि इस में एक जगह स्वेच्छा से बोलने का लिखा है पर अश्लील प्रेमियों को यह भी नहीं सूझता है कि जब इसका नाम ही बालकेष्टि रक्षोगन असुरों को मारने वाला यज्ञ है तब इसका अश्लीलता से सम्बन्ध ही क्या है ? यदि ये स्वेच्छा का अर्थ अश्लील ही लेते हैं तो फिर इस प्रसङ्ग में अछूत चण्डालों से हाथ मिलाना काष्ठ के शस्त्र अस्त्र लगाना गुड़ खाना भी तो लिखे हैं क्या ये उन चाण्डालों से हाथ मिला कर गुड़ खाने को भी तैयार होते हैं?

कदापि नहीं। ध्यान पूर्वक देखने से यह सब बातें गौण है और एक दुंडा का मारना ही मुख्य है। यदि यह दुष्टा पूर्वोक्त साधनों के बिना ही मरजाती ता अन्य बातों की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ती। अतः हम को भी इस दिन अपनी आसुरी वृतियों को ही मारना चाहिये चाहे अन्य साधन हों या न हों।

मेरे अनुभव में ढूंडा नाम किसी बच्चों के रोग का होगा जो अग्नि का ताप गुड़, का खाना काष्ठ (कोई बूटी) शस्त्र परिश्रम, भ्रमण का करना रात्रीमें जागरण करना आदि से नाश होता होगा। उपरोक्त मात्र वस्तु व साधन रक्त दोष के मिटाने वाले हैं जो इसके नामों से भी प्रतीत होता है। इसके नाम ये हैं— दुंडा, ढोंढा, अड्डा शीतोष्ण, होलिकादि। ढूढ़ने, खोजने, परताल, निदान करने से जो रोग जाता हो उसको ही ढूंडा, डोंडा कहते हैं। अडे हुये भयानक असाध्य रोग को अड्डा कहते हैं। सर्दी गरमी से होने वाले रोग को शीतोष्ण कहते हैं। होम से शांत होने वाले रोग को होलिका कहते हैं। कैसी सुन्दर एवं तात्विक परिभाषा है। यूनानी ग्रन्थों में माली नाम भी एक रोग का आता है जिससे कई तरह के रोगों का जन्म होना लिखा है वैज्ञानिक दृष्टि से यह होली बड़े ही महत्व की प्रतीत होती है जिसका आज भारत दुर्भाग्यवश दुरुपयोग कर रहा है जो भारत और भारत की सभ्यता के लिये एक भङ्कर कालिमा है। चाहे कुछ भी क्यों न हो इन

मात्र कथाओं का सारांश धर्म की रक्षा और अधर्म का नाश है आरोग्यता की रक्षा और रोग का नाश है सदाचार की रक्षा और व्यभिचार दुराचार का नाश है। इस सारांश से कोई भी बुद्धिमान पुरुप कह सकता है कि अश्लीलता का व्यवहार धर्म है कि अधर्म।

धर्म शास्त्र और होली—

ॐ एक धर्मसिन्धु को छोड़ कर किसी भी धर्मशास्त्र के कर्त्ता ने होलो चरचा नहीं की है धर्म सिन्धु एक अर्वाचीन संग्रहित भानुमति का कुनबा है। उसमें भी एक ज्योतिष के ग्रन्थ का प्रमाण है जिसका होली से कुछ भी सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। चाहे कुछ भी क्यों नहीं हो उसमें अश्लील शब्द इतनी खुली भाषा में लिखे हैं कि जिसे कोई भी सभ्य-पुरुष न लिख सक्ता है न बोल सकता है। फिर न जाने इस ग्रन्थकरता ने यह शब्द किस निर्लजता से लिख दिये हैं जिनके बल पर आज भारत में खुले आम निर्लजता का प्रचार हो रहा है ऐसे व्यभिचार को कोई भी पुरुष धर्म नहीं कह सकता। लिखने वाले ने तो अपने हृदय पर पत्थर रखकर लिख ही दिया है परन्तु बोलने वाले उसको और भी विष बना रहे हैं। वे यह भी नहीं सोचते कि इन शब्दों का कुछ और भी अर्थ होता है कि नहीं। ये शब्द शास्त्रों में अनेक अर्थों

में आये हैं। भगनाम उन ईश्वर को छः वस्तुओं का है जिनके होने से मनुष्य साक्षात् भगवान् और स्त्री साक्षात् भगवती हो जाया करती है।

भग को योनि भी कहते हैं। यह भी एक ईश्वर का मुख्य नाम है जैसे 'शास्त्र योनित्वात्' शास्त्रों की योनी होने से उस को योनि कहते हैं। विश्व की उत्पत्ति का कारण होने से भी उसको योनि कहते हैं। भग का ही एक नाम भर्ग भी है जो होम ऋग्वेद होता अग्नि, वसु वाक, पृथ्वी, सन्त, गायत्री प्राची, आदित्य चन्द्रमा, वीर्यादि होते हैं, जो धर्मरक्षा और अधर्म नाश के लिये परम प्रार्थनीय है जिनके लिये होली मनाई जाने लगी है।

ऐसे ही लिंग नाम भी शास्त्रों में आत्मा परमात्मा ईश्वर के ही नाम है जो यहां उच्चारण करना बिलकुल ही ठीक है राक्षसवध धर्म रक्षा यशपूति इन नामों के बिना कभी होती है जो होली के मुख्य विषय है।

---

१ 'भूतानियोनि' स्वेतास्वतु। ऐसे ही उपनिषदों में लिंग नाम भी परमात्मा जीवात्मा आदि नाम के अनेक स्थानों पर आता है पाठक वह देखने की चेष्टा करें।

फाल्गुन और होली—

फाल + गुण यह दो शब्द फल, फूल, कोर मोर, फाल मंजरी के गुणों को बताने वाला महीना है। इस महीने में मात्र वस्तुओं की मंजरी के गुण होम द्वारा निरक्षण किये जाते थे याने परखे जाते थे अतः इस महिसे में होली मनायी जाती थी। सायद इस यज्ञ का नाम फाल्गुनेष्टि फल फूलों के गुणों को परखने वाली इष्टि होगा, जिसका अधिकार आयुर्वेदाचार्यों को ही होता होगा। इसके प्रमाण में आजकल के आयुर्वेदान्वेषक भी इस ऋतुराज में बूंटी परिक्षा किया करते हैं, क्योंकि इस ऋतु में मात्र वनस्पतियें अपने पुष्पों को लेकर विश्व में अपनी परीक्षा देने आया करती हैं। इस ऋतु-राज में बूंटी के मात्र प्राकृतिक गुण वर्त्तमान होते हैं अतः इसको फाल्गुन कहते हैं। परन्तु आश्चर्य और शोक है कि जिस ऋतु में मात्र बनस्पतियें अपने गुणों को दिखाने बताने आते; हैं उसी गुणखानि ऋतु में मनुष्य समाज में मात्र अव-गुण फूट पड़ते हैं।

धन्य है इस सभ्यता की मूर्ति मनुष्य को जो गुण के स्थान में अवगुणों की परीक्षा देता है। कहां तो आज के दिन मनुष्य समाज के अवगुणों की होली होम होता था और कहां अब उसी दिन मनुष्य के गुणों की होली फूँकी जाती है। बलिहारी है इस उलट फेर की।

शिष्टाचार और होली—

कितने ही पुरुष इस होली रूप होम यज्ञ के साथ में शिष्टाचार के नाम से अश्लीलता का मंडन किया करते हैं और इसकी पुष्टि में वे 'महाजनो येन गतस्स पन्था' कह कर चिल्ला पड़ते हैं कि जहां श्रुति और स्मृति में विरोध आ पड़े वहां महान् पुरुषों के मार्ग से ही चलना धर्म है। परन्तु बुद्धि के दिवालियों को यह भी मालुम नहीं है कि (महान् जन) महाजन किस को कहते हैं और शिष्टाचार क्या वस्तु है ? यदि हम बुद्धिमानी की सत्य कसौटी से देखेंगे तो हम को पता लगेगा कि महाजन उन पुरुषों को कहते हैं जिनकी महानता समस्त जीवधारियों की उन्नतिदायक हो। सबको सदाचार के ढाँचे में ढालती हो। उन्हीं पुरुषों के आचरण व्यवहार का नाम शिष्टाचार है। शिष्टाचार का सीधा साधा अर्थ यह है कि शिष्ट अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों का आचरण। यह आचरण मन वाणी शरीर के विकार, दोषों को त्याग करके ही किया जाता है। देखो! इस पर शिवदसजी महाराज भी यही कहते हैं कि 'शिष्टाचार धारकर, मनको विकार तज,' मनवाणी काया को निर्दोष किये विना शिष्टाचार ग्रहण ही नहीं किया जा सकता और जो किया जाय तो वह शिष्टाचार ही नहीं है। अस्तु जिसके आचरण क्रम में यत्किञ्चित भी अशिष्टता अनाचारता आजाती है न तो उनको कोई शिष्ट पुरुष ही कह सकता है

श्रौर न उनके कर्म का नाम ही शिष्टाचार हो सकता है। जो शिष्ठ पुरुष होते हैं उनका ही नाम महाजन, महापुरुष महान् पुरुष होता है न कि सफेद बाल वालों का। मात्र धर्मों के शास्त्रों में कहा गया है कि निरे सफेद बालों से कोई वृद्ध नहीं होता है अपितु श्वेत पवित्र ज्ञान से ही वृद्ध होता है। महाभारत में भीम द्रोण कहते हैं कि पुत्र जो करने योग्य को और अकरने योग्य को नहीं जानता है जो धम और अधर्म को नहीं जानता है जो माग और अमार्ग को नहीं पहिचानता है और उन्नति और अवनति से अनभिज्ञ है ऐसा गुरु तथा वृद्ध और उसके आचरण त्याज्य हैं चाहे वह वृद्ध से भी वृद्ध क्यों न हों। विदुरजी भी ऐसा ही कहते हैं कि जो आचार्य कल्यान पथ पर नहीं लेजा सके वह त्याज्य है। अस्तु शिष्ट महान् वृद्ध पुरुष उसे ही कहते हैं कि जिसके आचरण शास्त्रानुकूल उन्नतिप्रद पवित्र जीवन देने वाले हों। इसी तत्व को ध्यान में रखकर महर्षि जैमिनी ने रूढ़ी से शास्त्र को बलवान् कहा है। यही बात भगवान श्रीकृष्णचन्द्र गीता अध्याय १६ में कहते हैं कि करने योग्य और न करने योग्य की व्यवस्था शास्त्रों से ही जाननी चाहिये और शास्त्रविधि से विरुद्ध कामवश होकर वर्तते चलते हैं उनको सिद्धि सुख परमगति उन्नति नहीं मिलती है। इस मात्र कथन से सिद्ध होता है कि वही शिष्टाचार रूढ़ी मान्य होती है जो शास्त्रोक्त सिद्धि सुख परमगति उन्नति देनेवाली हो न कि वह जो सिद्धि सुख

परमगति उन्नति के मिटा कर मनुष्य के मनुष्यपन से भी गिरा देने वाली हो । यदि ऐसा ही होता तो वृहस्पति और चन्द्रमा वाला बंटवारा आज हमें करना चाहिये था इत्यादि अनेक उदाहरण शास्त्रों में शिष्टाचार और वृद्ध पुरुषों के हमें मिलते हैं जिनको हम नाम लेते हुये भी पाप समझते हैं। अतः धर्म और शास्त्रों से विरूद्ध महाजन पुरुषों के मार्ग को भी शास्त्रकारों ने त्याज्य ही कहा है। देखिये हाथी के धोखे में श्रवण का वध होने पर राजर्षि दशरथ क्या कहते हैं कि कभी कभी रज या तम के वेग में आकर श्रुति और स्मृति यों के ज्ञाता महाजन पुरुष भी पथभ्रष्ट होजाया करते हैं क्योंकि मैंने जानबूझ करके भी यह नहीं सोचा कि धर्म शास्त्रों में हाथी का शिकार वर्जित है अतः महान् पुरुषों के भी सब कार्य मान्य नहीं हुवा करते हैं फिर नहीं जाने ये कामान्ध पुरुष होली जैसे पवित्र त्योंहार पर यह अत्याचार क्यों फैलाते हैं ? परमात्मा उन्हें सुबुद्धि दे ।

श्रृङ्गार-वसन्त-होली-

कितने ही चंचल पुरुष कह दिया करते हैं कि वसंत ऋतु में श्रृंगाररस अवश्य गाना चाहिये। इस मत से कई भद्र पुरुष सहमत देखे जाते हैं और इसी रस के नाम से वह

समाज में अश्लीलता रूप व्यभिचार दुराचार का प्रचार किया करते हैं। यदि इनको शृङ्गाररसके तात्विक स्वरूप का ज्ञान होता तो ये कभी अपनी जिह्वा पर अश्लीलता की गन्ध लगाकर समाज में दुराचार दुर्गन्धी नहीं फैलाते होते। शृँङ्गाररस परमात्मा के उस सौन्दर्य का नाम है जिससे शृङ्गार की मात्र वस्तुओं उत्पन्न हुई है। शृँ बीज लक्ष्मी विद्या क्रांति तेज शक्ति रक्त आदि का सूचक है; और गार नाम घरस्थानादि का है। अतः जो लक्ष्मी विद्याक्रांति तेज शक्ति रक्त आदि का घर हो या जिसमें ये मात्र वस्तुओं बनती हो उसको ही शृङ्गाररस कहते हैं। यह सब वस्तुओं सिवाय परमात्मा के अन्य किसी एक में नहीं मिल सकती अतः परमात्मा के गुणों का वर्णन ही शृङ्गाररस का वर्णन है परमात्मा के सौन्दर्य की उपासना ही सौन्दर्य की उपासना है। इसी परमात्मा के देन शृङ्गार से सुसज्जित होकर वसन्तऋतु आती है। जो इस रहस्य को समझते हैं वे कभी वसन्तऋतु में शृङ्गार के विघातक अश्लील शब्दों को वसन्तऋतु के भेट नहीं करते हैं। अस्तु शृङ्गार, सौन्दर्य सुडौलता यह एक ही वस्तु के नाम है जिसमें सुडौलता नहीं उसमें सौंदर्य ही नहीं, जिसमें सौन्दर्य नहीं वह शृङ्गार ही क्या और क्यों होगा ? बस इन तीन वस्तुओं को ही शृंङ्गार रस का बीज समझ कर शृङ्गार रस के उपासकों को इनके बनाने अर्थात् लाने में लगजाना चाहिये। इन तीनों तत्वों की वृद्धि क्रम से

व्यायाम, ब्रह्मचर्य, एवं सदाचार से होती है इनके प्रचार को करना बढ़ाना ही वसन्तऋतु में शृङ्गाररस का गाना है जिन शब्दों से इन पूर्वोक्त सौन्दर्य के साधनों का नाश होता है उन शब्दों को कोई भी बुद्धिमान पुरुष शृङ्गाररस नहीं कह सकता है । अस्तु वसन्तऋतु में शृङ्गाररस वृद्धि के लिये क्रम से ब्रह्मचर्य सदाचार व्यायाम को ही गाना चाहिये इससे ही भारत के नवयुवकों का सौन्दर्य शृङ्गार बढ़ेगा जिसकी वृद्धि से ही भारत में श्रेय एवं प्रेय अथवा अभ्युदय और निःश्रेय के अबीर गुलाल उड़ेंगे अन्यथा शृङ्गार रस के नाम से तुम अपने जीवन को व्यभिचार की छुरी से काट रहे हो । आठ प्रकार के मैथुनों में से सातों को अपना रहे हो। दुराचार की चिता में सदाचार को फूंक रहे हो, निर्बलता की अग्नि में सबलता की आहुतियें दे रहे हो, अधर्म की कब्र में धर्म को गाड़ रहे हो भारतीय सभ्यता के सिंहासन पर असभ्यता को बिठा रहे हो। अभ्युदय, निःश्रेश प्रेय, श्रेय अर्थात् उन्नति और मुक्ति को मिटाकर अवनति और नर्क को तयार कर रहे हो। उफ ! वह देखो तुम्हारी आकृति को देख कर आकाश में सौन्दर्य रो रहा है वह कहता है कि हाय आधुनिक सुन्दरता ! तेरी आँखें मृतकभृङ्ग के सदृश अन्दर गढ़ गई हैं, गाल चूसे हुवे आम्र की तरह बैठ गये हैं, छाती कूर्म के पेट के सदृश अन्दर को घुसती आरही है, पेट भग· वान गणपति से भी बाजी मार गया है, टाँगे कुर्सी की

टांगों से भी स्थूल हो गई है। अब जरा अपने बाबूओं को भी देख लीजिये कि किस सांचे में ढलते जारहे हैं क्या साहब लोगों की सिगरेट इन से जीत सकती है कदापि नहीं। शोक! शोक !! महाशोक !!! आप इतने सुन्दर होकर भी शृङ्गाररस के गाने का ठेका ले रहे हैं। सचमुच ही जिसके नाश के दिन निकट आते हैं उसको उलटा ही सूझा करता है नहीं तो हम शृङ्गाररस के नाम पर शृङ्गाररस के जीवन तत्वों को क्यों मिटाते होते?

हास्य और अश्लीलता—

पूर्वोक्त शृङ्गार रस के ठेकेदार ही वसन्तु ऋतु में हास्य रस के द्वारा भी अश्लीलता का समर्थन किया करते हैं। परन्तु ॐ इस बात को कहते भी संकोच नहीं किया करता है कि जैसे यह बुद्धि के अन्धे शृङ्गार रस के तत्व से अनभिज्ञ हैं वैसे ही ये हास्य रस के तत्व से भी अनभिज्ञ ही हैं जैसे शृङ्गार रस का तत्व शरीर की प्राकृतिक बनावट है वैसे ही हास्यरस का तत्व भी हृदय की खिलावट है। जैसे प्राकृतिक सुडौलतायुक्त सौन्दर्य पर मात्र शृङ्गाररस नत मस्तक हो जाते हैं वैसे ही प्राकृत हृदय के हास्य पर मात्र हास्य निसार हो जाया करते हैं। जिसके हृदय के हास्य की रश्मियें उसके

मुख मण्डल पर आकर उसके हृदय के भाव विश्व के सन्मुख विशेष करती है उसी हास्य रस के मतवाले को हास्य करने का अधिकार हुवा करता है। इसके हास्य रस में सत्यता और पवित्रता दोनों ही तत्व निहित होते हैं वह अपने हास्य से विश्व के भावों की काया पलट दिया करता है। ऐसा हास्य सचमुच ही हृदय के देवता की प्रेरणा हुवा करता है इसमें मिथ्या और अश्लीलता के लिये जगह ही नहीं होती है। सच बात तो यह है कि हास्य रस देववाणी का ही नाम है जिसमें असत्य को सत्य, पाप को पुण्य अधर्म को धर्म, दुख को सुख, अवगुण को गुण, अपवित्रताको पवित्रता, तथा अकर्मण्यता को कर्मण्यता में परिवर्तन करने की महान् शक्ति होती है। जिनके हृदय का हास्य रस रूप देवता प्रत्यक्ष सिद्ध हो गया है वह पुरुष सहज में ही निर्जीव को जीवन परतन्त्र को स्वतन्त्र कायर को वीर, डरपोक को निर्भीक, नामर्द को मर्द निर्बल को बली, व्यभिचारी को सदाचारी बना सकता है। आज यह हास्य रस का देव ही भारत के हृदय मन्दिरों को छोड़ गया है अत. भारत की सौभाग्य श्री दुर्भाग्य में बदल गई है। अब ॐ हास्य रस के एक दो उदाहरण देता है जिनसे पाठक समझेंगे कि हास्य रस किस को कहते हैं? उसमें कैसी विचित्र शक्ति होती है? हास्य में हास्य कैसे समा जाता है? वह कितना पवित्र होता है? इत्यादि॥

एक समय महा माया लक्ष्मीजी पार्वतीजी से हँसी मज़ाक करने कैलास पधारीं। वहां पहुँचते ही पूँछा कि बहिन वह पशुओं के मालिक कहां हैं ? पार्वतीजी तुरन्त लक्ष्मी के हृदय की बात ताड़ गईं, और उत्तर दिया—बहिन वे कहीं वृन्दावन में बछड़े चराते होंगे। लक्ष्मीजी कुछ शरमिन्दा होकर बोलीं नहीं बहन मैं तो उन चावलों के चवैया को पूछती हूँ।

पार्वती—वह भी सुदामा की काख से छीन कर चबा रहे होंगे।

लक्ष्मी—(संकोच कर) मैं तो उस फल पत्ति भक्षक को पूछती हूँ।

पार्वती—(मुस्करा कर) बहन विदुरजी के घर या काम बन में द्रोपदी के पास खा रहे होंगे, क्या तुम आज भंग पिकर आयी हो ?

लक्ष्मी—बहन मैं ही भंग पीलेती तो बाबाजी फिर क्या पीते ! भंग तो तुम्हारे घर की है। मैं तो सर्प वाले बाबा को पूंछती हूँ, जिससे हमारे बालक डर जाते हैं और तुम कुछ और को ही बतलाती हो।

पार्वती—(कुछ हास्य युक्त व्यंग से) वही शेष की शय्या पर सोते होंगे। आज ऐसे अनजानों की तरह क्यों पूछती हो क्या कहीं सचमुच ही गुम होगये हैं ? क्या तुम को उन्माद हो गया है ?

लक्ष्मी—(कुछ हास्य और जोशके साथ) तुम्हारे मस्तक में न जाने चोबीसों घण्टे क्यो दिल्लगी समाइ रहती है मैं तो पूछती हूँ उस विषाहारी को तुम बताती हो किसी और ही को।

पार्वती—तो बहन इसमें इतनी तेज होने की कौनसी बात है? आप जिसको पूछती हैं मैं ठीक उन्हीं का पता बताता हूँ। वह विषाहारी भी या तो काली दह में सर्पों का रस चूस रहे होंगे या मीरां बाई के प्याले में होंगे या भीम के पेट में विष भरे लड्डू खा रहे होंगे।

यह सुनते ही लक्ष्मीजी ने पार्वतीजी के हृदय से अपना हृदय मिला दिया और दोनों ऐसे ही एक तत्व में समा गईं जैसे शिव विष्णु और विष्णु शिव में समाये हुवे थे। अहा! कैसा तात्विक हास्य रस है। जिससे हँसते हँसते ही ब्रह्म के तत्व को पा लिया। यही सच्चा हास्य रस है जिससे दोनों ओर आनन्द की लहरें फूट पड़ती हैं। जिन गालियों को देकर हम हँसा करते हैं उनसे दूसरे का आनन्द सूख जाता है उन गालियों को कोई भी बुद्धिमान पुरुष हास्य रस नहीं कह सकता है।

अस्तु अब दूसरा उदाहरण लीजिये। अपने पहिले की हार को स्मरण करके लक्ष्मीजी के मन में फिर हास्य करने की आई और वे कैलाश में गईं। उन्होंने उस दिन की हार

को याद करके सोचा कि आज पार्वतीजी से ऐसा हास्य करना चाहिये जिससे विजय अपने ही को मिले। फिर तो क्या था उनको अपने विजय का चित्र पट भी मिल ही गया। वे गणेश भगवान को देखते ही व्यङ्ग से बोले कि ओहो कैसी कामान्ध औरत है जिसके सोक में पड़ कर इस बच्चे को दूध तक भी पिलाना भूल गई है। अरे! देखो तो ऐसी इसकी निर्दयता का नमूना इस बच्चे पर कैसे दीख रहा है! इसका पेट बढ़ गया टांगें, हाथ, गर्दन सूख गये हैं। सच है काम ऐसी ही वस्तु है जिसके वश में पड़ कर प्राणी आप अपने आत्मज पुत्र की भी ऐसी दशा कर देते हैं। मैंने तो सुना था कि चाहे पूत कपूत भले ही हो जावे पर माता कुमाता नहीं हुवा करती, पर यहां तो गंगा बिलकुल उलटी ही बह गई है। यह सब सुन कर पार्वतीजी ने मुस्कान पूर्वक कहा कि बहन क्या करूँ अपने पुत्र से बहन के पुत्र पर अधिक प्रेम हुवा ही करता है। अतः इस तेरे पुत्र काम के आगे मुझे गनेश की सुध ही नहीं आती है न तो तू काम को जन्म देती और न गनेश इतना दुबला होता। इस सब दुबलेपन का पाप तेरे ही शिर पर है। गनेश की कौन कहे इस तेरे लाडले काम ने तो संसार से ही सदाचार को चौपट कर दिया है। मेरी समझ में तो न तो तू जन्म लेती और न काम जन्मता तो संसार मात्र सदाचारी व सन्मार्गी ही रहता होता। अब तू ही कह इसमें मेरा क्या अपराध है? मेरा तो तेरे बच्चे को प्रेम करना धर्म ही है क्योंकि कहते ही हैं कि मरो मा जीवो माँसी।

कैसा सात्विक हास्य है जिसमें एक मात्रा भी मिथ्या एवं बनावट नहीं हैं। भगवान विष्णु ने तभी तो नारद को बन्दर का मुख बना कर दुराचार से बचाया था। ऐसे अनेकों हास्य और व्यंग कथानक शास्त्रों में मिलते हैं जिन से मनुष्यों का उद्धार सहज में ही हो जाता है।

व्यवहारिक हास्य

एक युवति वीराङ्गना हाथ में खड्ग लिये अपने द्वार पर खड़ी थी। उसे देखकर किसी मन चले युवक ने कहा कि तू तो स्वयं ही खड्ग से बढ़कर है तुमको खड्ग की क्या आवश्यकता थी? युवति ने कहा कि प्रिय भ्राता तेरी वाणी पर दुराचार रूपी महान् विषधर काला सर्प बैठा है जो तेरे जीवन के तत्व खारहा है। उसको मार तेरे जीवन के तत्व को बचाना ही खड्ग का उद्देश्य है। इस हास्य मय पवित्र व्यङ्ग को सुनते ही युवक के हृदय से पाप वासना का पवित्र वासना में परिवर्तन होगया और उसने युवति के चरण छूकर कहा कि बहन [illegible] धन्य है जो तेरे जैसी दुराचार रूप सर्प को मार मनुष्य जीवन को बचाने वाली पवित्र आत्मा के दर्शन हुवे हैं तेरे हास्य में वेद से भी बढ़कर उपदेश बल है जिसने मुझको और मेरे जीवन को कल्याण की गङ्गा में डुबो दिया है कितने

महत्व का हास्य है इसको तो कोई हास्य रस का तत्वज्ञ ही समझ सकता है।

जिस वक्त जोधपुर में बाबा रघुवरदास की जमात आई थी उस वर्ष एक व्यक्ति ने ३०ँ से एक व्यङ्ग दोहा कहा था जो हास्य के लिये बड़ा ही महत्व का है जिसमें पाखंड का हूबहू चित्र खींचा गया है "चांदपोल के बहार में भई लएठन की भीर, सतीत्व धन भोजन हरे, फिर भी संत फकीर"।

* बसन्त बहार' और अप्रेल फूल

बसन्त बहार नामक पुस्तिका की भूमिका में जिसमें कि लेखक ने अश्लीलता का खूब विश्लेषण किया है बतलाया है कि जब अंग्रेज जैसी सभ्य शिरोमणी जाति भी 'अप्रेल फूल' नाम के त्योहार में अत्यन्त हास्य युक्त व्योहार करती है तो फिर न जाने यह सुधारक बसन्त की हास्य युक्त अश्लीलता को किस बुते पर उठा देना चाहते हैं ? ३०ँ की समझ में उसके लेखक अंग्रेजी सभ्यातको ही ईश्वरीय सभ्यता और अश्लीलता के अन्त को ही सभ्यता का अन्त समझते हैं यदि ऐसा नहीं होता तो फिर उक्त सज्जन ऐसी अनर्गल बातें क्यों लिखते होते ? भला जिस सभ्यता का उत्थान विशेषकर अहार और मैथुन पर ही निर्मित है जिसमें भोग और विला-

* लेखक—गणेशदासजी वकील जोधपुर।

सिता की भयंकर अग्नि भभक रही है उसको कौन बुद्धिमान् पुरुष सभ्यता कहेगा ? जिसमें मांस को मुख्य आहार और मदिरा को मुख्य पेय माना गया है, जिसमें शारीरिक सुखों को ही सुखों की इतिश्री समझा जाता है वह सभ्यता कैसी ? प्रथम तो आहार और मैथुन को ही मुख्य आसन देना असभ्यता का जीवन है फिर उस पर विलासिता की बूर चढ़ा देना तो मानो खूनी बाग को शराब पिलाकर ही छोड़ देना है। ॐ के अनुभव में यह सभ्यता नहीं बल्कि विश्व के लिये एक भयानक सिंह ही है जो विश्व को खाकर ही दम लेगा। सच बात तो यह है कि यह भोग और विलास के बीच में पलने वाली सभ्यता नहीं बल्कि एक संहार शक्ति है, यह मैथुन और आहार की चक्की के दो पाटों में पिसने वाली सभ्यता नहीं बल्कि मृत्यु है, यह विलासिता की खूनी पोशाक वाली सभ्यता नहीं बल्के महान् असभ्यता है, फिर चाहे वह विमानों में ही क्यों नहीं उड़ती हो। सच्ची सभ्यता में भोग मैथुन तथा विलासिता के लिये स्थान हीं नहीं है। वह तो स्वच्छ पवित्र सदाचार सादेपन की ही आदर्श मूर्ति होती है जिसमें राव और रङ्क दोनो ही चल सकते हैं। जो खून पीने की इच्छा नहीं बल्कि बढ़ाने की इच्छा किया करती है। जिसका सीधासादा सम्बन्ध इश्वरीय तत्व से होता है जिसमें 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' के चक्षु खुल जाते हैं, जहां पर क्या सम्राट, क्या बालक, क्या स्त्री, क्या तत्ववेता ब्राह्मण सभी

एक ही स्वर में कह उठते हैं कि [1]'तृष्णा जयं स्वर्ग पदं किं अस्ति', [2]'भोगे रोग भयं', [3]न मम देहे न मे देहे,' [4]'स्तवैव गाहा स्तव नृत्य गीते', [5]नवित्तेन तर्पणीया मनुष्या', [6]'संसार माया परिवर्जितोपी', अर्थात् तृष्णा के नाश होने पर स्वर्ग है ही क्या ? भोगों में रोग का भयानक कोडा है। देह मेरी नहीं मैं देह का नहीं,। तेरे नाचने गाने आदि भोग तुझ को ही मुबारक हों। धन से मनुष्य को तृप्ति नहीं होती है। बेटा मायारूप संसार का त्याग करो। अब पाठक ही कहें कि जिस सभ्यता में उपरोक्त भाव हों वही सभ्यता आदर्शनीय है या 'April fool' वाली सभ्यता जिसका नामकरण ही असभ्यता का सूचक है जैसे अप्रैल फूल' अर्थात् 'अप्रैल की मूर्खता' या 'अप्रैल का मूर्ख' वा 'मूर्ख अप्रैल'। फिर उसमें हास्य युक्त (अश्लीलता) नहीं तो और क्या बोले ? पर शोक है कि इस सभ्यता का उदाहरण देकर हम वसन्त जैसी सर्व प्रिय सर्व गुण सम्पन्न पवित्र ऋतु में अश्लील बोलने का समर्थन करते हैं जिसको हमारे पूर्वज महर्षि विश्व का घृत

१ एक तृष्णाजयी गृहस्थी ब्राह्मण, २ महाराज भर्तृ, ३ सम्राट् जनक ४ सात वर्ष का बालक, ५ नचिकेता ६ सती मदालसा।

* वसन्त बहार की भूमिका के लेखक महोदय 'हास्य' 'अश्लीलता' 'शृङ्गार' 'काम' 'रङ्गराग' सब में कुछ भी भेद नहीं मानते। यह वास्तव में हास्यास्पद है।

सुगन्धि और विद्या की दात्री आरोग्यता का भंडार आसुरी वृतियों की संहारक यज्ञों का महान् पर्व माना है।

अवतार और वसन्त—

वसन्त ऋतु कुछ मत भेद से वसन्त पञ्चमी से वैशाख पञ्चमी तक मानी गई है इतने समय में जितने अवतार इस ऋतु में हुवे हैं उतने अन्य किसी भी ऋतु में नहीं हुवे। इससे भी इसका महत्व सब ऋतुओं से अधिक एवं पवित्र ठहरता है। मुख्य वसन्त पञ्चमी को ही ब्रह्मचर्य और विद्या की मूर्ति भगवती सरस्वती देवी का जन्म हुवा है। महान् शोक है कि उस दिन से ही आज कल के फगुए व्यभिचार और अविद्या को जन्म देते हैं। इसी ही पवित्र ऋतु ने मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री रामचन्द्र को जन्म दिया है जिन्होंने संसार से अमर्यादाओं को मिटाया था पर हाय! आज हम उसी पवित्र ऋतुमें मर्यादाओं को मिटाकर अमर्याद युक्त हो रहे हैं। इसी पवित्र ऋतु ने आदर्श ब्रह्मचारी लक्ष्मण एवं हनूमान को उत्पन्न किया था पर शोक है कि जिस ऋतु में ब्रह्मचर्य जन्म ग्रहण करता था उसी ही ऋतु में हम व्यभिचार को जन्म दे रहे हैं। इसी ऋतु में भगवान् शंकर की शिवरात्री कल्याण तिथि आती है जिसमें कि मूर्खतावश हम महान् अकल्याण का संग्रह कर रहे हैं। इसी ऋतु में भगवती अजय शक्ति की

चैत्री 'नवरात्री' आती है जिसने अपने महान् आदर्श ब्रह्मचर्य बल से बड़े बड़े असुरों का संहार किया था पर दुःख है कि हम उसी दिन स्वयं असुर बन कर व्यभिचार का अभिनय करते हैं। इस ऋतु में ही ब्राह्मण कुल तिलक अखण्ड ब्रह्मचारी वीर शिरोमणी अन्याय एवं कामरत नरेशों के घातक भगवान् परशुरामजी का जन्म हुवा था। जिन्होंने अश्लीलता के लिये अपनी माता तक का भी वध कर डाला था। उ.फ उसी ऋतु में हम अपनी मा एवं बहिनों के सामने अश्लीलता का प्रचार करते हैं। इसी ऋतुमें वैदिक धर्म के उद्धारक अज्ञान तिमिर के विनाशक स्वयं ब्रह्म ज्योति की आकृति भगवान् शङ्कराचार्य का आविर्भाव हुवा था जिस ऋतु में अब हम वैदिक धर्म को कुचल कर महान् आसुरी अन्धकार फला रहे हैं। धिक्कार है हमारे जीवन को।

कुछ फुट कर बातें—

कहीं कहीं तर्क एवं बुद्धि से शून्य पुरुष कहा करते हैं कि व्यवहारिक दृष्टि से वसन्त में अश्लील बोलना आवश्यक है। यदि इन व्यवहार के पण्डितों को व्यवहारिक सभ्यता का कुछ भी ज्ञान होता तो सायद वे अपनी इस सभ्यता के साथ में अश्लीलता का गण्ठ बन्धन करने वाली जिह्वा को काट कर ही फेंक देते होते क्योंकि व्यवहारिक सभ्यता का अर्थ ही

सभ्यता से बोलना, सभ्यता से हँसना, सभ्यता से देखना, सभ्यता से बैठना, सभ्यता से उठना, सभ्यता से चलना, सभ्यता से खाना, सभ्यता से पीना, सभ्यता से ओढना, पहनना आदि मात्र दैनिक क्रियाओं को सभ्य स्वच्छ एवं पवित्र बनाना है। इस असभ्य भ्रष्टाचार को कोई भी बुद्धिमान् पुरुष सभ्यता नहीं कह सकता है। शायद इसके समर्थकों का भी हृदय तो इसको असभ्यता कहता होगा यदि ऐसा नहीं होता तो वे इस सभ्यता को अपने घर से प्रारम्भ करते होते क्योंकि मात्र अच्छी वस्तुओं का प्रचार प्रथम अपने घर में ही किया जाया करता है परन्तु न जाने यह कैसी सभ्यता है जो अपने घर वालों से छिपा कर दूसरो में वितरण की जाती है। सचमुच ही इसका ही नाम परमार्थ है।

ॐ कहीं बुद्धि के निहंग बाबा यह भी कहा करते हैं कि वसन्त ऋतु में अश्लील न बोलने से मनुष्य का पुरुषत्व जाता रहता है, अतः पुरुषत्व की रक्षा के लिये वसन्त में अश्लील अवश्य मेव बोलना चाहिये। पर जहां तक अनुभव हुवा है वहां तक तो यह ही पता चला है कि अश्लील विरोधी मर्द और अश्लील नायक नामर्द सिद्ध हुवे हैं। इस अनुभव का आधार यह है कि अश्लील विरोधियों में तो नवे (९०) प्रतिशत सन्तान वाले हैं और अश्लील नायकों में ९० प्रतिशत सन्तान हीन

हैं उनमें भी कन्या दान करने वाले अधिक मिले हैं इसका कारण प्रत्यक्ष वीर्य की कमजोरी निर्बलता है। काम सम्बन्धी शब्दों से वीर्य में कम्पन उत्पन्न होकर उसमें पतलापन और निर्बलता का आना स्वभाविक है; निर्बल वीर्य से लड़की और सबल वीर्य से लड़के का होना आयुर्वेद से सिद्ध है। आयुर्वेद कहता है कि स्त्री का वीर्य बलवान होने से लड़की और पुरुष का वीर्य बलवान होने से लड़का होता है। दूसरा कारण यह भी मालूम होता है कि प्राय इन नायकों में अधिक आदिकुँवारे और रण्डुवे ही देखने को मिलते हैं जिन का सन्तानोत्पत्ति से घायकाट ही होता है। ये तो काम की अग्नि को शान्ति देने के लिये ही अश्लील गायकों में सम्मिलित होते हैं। यदि ऐसा न होता तो ये लोग इस दुराचार में भाग क्यों लेते होते ? सचमुच यदि इन आदिकुँवारे रण्डुवों का कोई सदाचारी सञ्चालक हो तो ये लोग समाज राष्ट्र के लिये बड़े ही उत्थापक वीर रत्न हो जावें जो अभी अधिकांश में अत्याचार के पंजे में फँसे हुए हैं।

३० कहीं अश्लीलता के समर्थक यह भी कहा करते हैं कि यह अश्लील बोलने वाले तो बोलते मात्र ही हैं उनके मानसिक भाव बहुत पवित्र होते हैं और यह अश्लीलता के विरोधी मन के मैले कपट मुनि ही हुआ करते हैं; परन्तु उनकी यह बात बिलकुल शास्त्र और अनुभव से विरुद्ध है।

शास्त्र कहता है कि 'यद् मनस मनुते, तद् वाचा वदती' जिस शब्द का मन मनन-निश्चय कर लेता है उसको ही वाणी बोलती है। तभी तो किसी महात्मा ने कहा है कि जैसी मन में ठानी वैसी बोले बानी। मन और हृदय की सहायता बिना मनुष्य श्वास भी नहीं ले सकता है वाणी की तो कौन कहे? जिसका मन सदाचार की गङ्गा में स्नान कर चुका है उसकी वाणी के लिये अश्लील शब्द विष्ठा से भी अधिक घृणित वस्तु होजाते हैं। मनुष्य मन की शांत स्थिति में क्रोधयुक्त शब्दों को बुरे से भी अति बुरे समझता है परन्तु जब मन क्रोध के विष से विषाक्त होजाता है तब उन ही शब्दों को अपने पूज्य माता पिता तक को भी बोल देता है तभी तो कहा है कि 'मन पूतं वदेत वाक्यं' वाक्य को मन से धोकर ही बोलना चाहिये 'मन: शिव संकल्पमस्तु' क्या इसका अर्थ मन को धोकर पवित्र बनाना नहीं है? जो मनुष्य मन एवं वाणी का सम्बन्ध जानता है वह पुरुष कभी नहीं कह सकता है कि अमुक पुरुष ने अमुक अश्लील शब्द शुद्ध मन से कहे थे और अमुक ने शुद्ध शब्द मलीन मन से कहे थे। जिस शब्द की मन में प्रथम रचना होजाती है उसको ही वाणी बोला करती है जैसे चित्रकार का चित्र प्रथम मन में बन लेता है वैसे ही शब्द का चित्र भी प्रथम मन में ही बनकर वाणी पर आया करता है।

३० कहीं काव्य के रसिक यह भी कहा करते हैं कि वसंत ऋतु में कामदेव को उतना ही प्रोत्साहन मिलता है

जितना कि शस्त्रशाला को देखकर एक विजयी योधा को मिला करता है। जैसे शस्त्रशाला योधा के रोम २ में वीरत्व को जगा देती है वैसे ही बसन्त ऋतु मनुष्य जीवन की बोटी बोटी में काम को खड़ा कर देती है क्योंकि काम का नाम पुष्पायुध है अथ: इस काम की तीव्रता को कम करने के लिये वसंत में अश्लील अवश्यमेव बोलना चाहिए अन्यथा किसी भयंकर रोग हो जाने का भय है। ३०॰ इनकी काव्य रसिकता और कामान्धता का नमूना तो देखिये जिनको कामदेव का पुष्पायुध होना कामान्ध बना देता है जिससे इनकी बोटी २ काम २ रटने लगती है। यदि इनकी यह वार्ता सच है तो फिर जिन योगियों की कुटियों पर बारहों ही महिने किसी न किसी तरह के पुष्प खिला करते हैं तो उनको काम क्यों नहीं खा जाता है? यह इनकी एकऐसी कामान्धता है जैसे एक भांग पीने वाले को चारों तरफ भांग ही भांग नजर आवे। कामका मुख्य नाम पुष्पायुध नहीं बल्कि मनोज मन से होने वाला है कामदेव का पुष्पायुध नाम होना न तो यही सूचित करता है कि पुष्पों से विश्व में काम की प्रवृत्ति होती है और न यही सूचित करता है कि काम एक अजय शक्ति है। अपितु पुष्पायुध से उसकी निर्बलता का ही परिचय मिलता है जैसे शास्त्रों में स्वर्ग का नाम पुष्पायु कहा है जिस से स्वर्ग की तुच्छता ही बतलानेका तात्पर्य है न कि महानता वैसे ही पुष्पायुध नाम भी काम की निर्बलता का ही सूचक

है । इस नामका तात्पर्य यह है कि जैसे पुष्प के मर्दन में कुछ बल की आवश्यकता नहीं है तैसे ही सदाचारी पुरुषों को भी काम मर्दन के लिये किसी विशेष बल की आवश्यकता नहीं है । भला सदाचार की खड्ग के आगे पुष्प की खड्ग का क्या बस है परन्तु वैसे बली वोही सदाचारी योधा होंगे जिन्होंने अपने को सदाचार में तन्मय बना दिया है । जो वीर पुष्प की तोप से ही थर २ कांपने लगते हैं उनके वीरत्व की तुलना किस वीरत्व से की जावे ? यही वीरत्व राष्ट्र समाज जाति को अवनति की गर्त में खींचे लिये जारहा है । बलिहारी है इस सूझ की जो पुष्पायुध होने से ही वसन्त में अश्लीलता का समर्थन करते हैं और बलिहारी है उस सूझ की जिससे कहते हैं कि वीर्य को रोकने से रोग का भय है। शास्त्र तो कहता है कि 'मरण बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दु धारणे' उर्ध्व रेता भवेतम् यावत् तावत् काल भय कुतः' पर ये कहते हैं कि उर्ध्व रेता होते ही मर जाता है । हा भरत के दुर्भाग्य को उलट फेर ।

३० कई पुरुष कहते हैं कि यदि अश्लील छोड़ना ही होवे तो जङ्गलों में ही क्यों नहीं चले जावो । यह अश्लील विरोधी तो मात्र संसार को ही सन्यास की दीक्षा देना चाहते हैं नहीं तो इन शांत रस के गायनों का गृहस्थ जीवन से क्या सम्बन्ध पर इनको यह भी मालुम नहीं है कि सन्यास किस को कहते हैं । सन्यासी एक गृहस्थी भी हो सकता है और गृह त्यागी

भी। यदि कोई गृहस्थ में ही सन्यास की साधना करले तो फिर उसको गृहस्थ त्याग ने की आवश्यकता नहीं होती है। गीता अध्याय ६ (१) में कहा है कि अग्नि और कम के त्याग ने से हो सन्यासी नहीं होजाता अपितु सन्यासी वही होता है जो करने योग्य कर्म को अनाश्रेय होकर करता है इसका अर्थ यह है कि जो पुरुष अपने मात्र कर्मों को सदाचार की गंगा में नहला कर इतने स्वच्छ बना लेता है कि जिससे वह स्वयं ही परमात्मा की स्वच्छता में हेलमेल हो जावे याने आने में उन कर्मों का कुछ भी अस्तित्व न रह जावे। यही सच्चा गृहस्थ सन्यास है इस कर्म श्रेणी को ही कर्म सन्यास सेश्रेय कहा है इसका ही नाम कर्म की कुशलता रूप योग है। ऐसे ही कर्मों को यज्ञ करने को आज्ञा है। ऐसे कर्मों को त्यागने की आवश्यकता ही नहीं है जिन को जीव की कामाग्नि से रोक कर ईश्वर की ज्ञानाग्नि में होम कर दिया जाता है। जो मनुष्य पांच इन्द्रिय का निग्रह कर लेता है वह घर में ही तपस्वी है जो कर्म को निवृति के लिये ही कर्म में प्रवृत्त होता है जिसने कर्म से राग एवं दोषों को हटा दिया है उस महापुरुष के लिये घर ही [1]तपोवन है। इस प्रकार जो ईश्वर संचालित क्रिया के आधार पर ही कर्म करते हैं उनको बन में जाने की कोई आवश्यकता ही

१ निवृत्त रागस्य गृह तपोवनं

नहीं है। भगवान् शंकाचार्य से प्रथम इस श्रेणी के सन्यासियों की अधिकता ही थी जिनके जीवन कर्म ईश्वर संचालित क्रिया से ही हुवा करते थे। यही कारण है कि उस समय कितने ही राजर्षियों को भी जीवन मुक्त की और विदेह मुक्त की पदवियो मिली [1]हुई थी। इसी आधार पर तो भगवान् श्री कृष्णचन्द्र कहते हैं कि 'किंतद् ब्राह्मणा पुज्या, भक्तया राजर्षिय: तथा' जब अपनी जीवन क्रियाओं को ईश्वर में मिलने लायक पवित्र बनाने से एक शूद्र भी सन्यासी के तत्व को पालेता है तब राजऋषि और ब्राह्मणों की गणना ही क्या है? जो इस तत्व सन्यास से अनभिज्ञ हैं जिनको कर्म अकर्म विकर्म का यत्किंचित् भी ज्ञान नहीं है जो अपनी जीवन क्रियाओं को विषयों की भट्टी में होम चुके हैं वेही इन अश्लीलता के विरोधियों को बन में जाने के लिये कहते हैं। शायत् उनकी दृष्टि में यह गृहस्थ जीवन एक अश्लीलता की नाट्यशाला है, एक भोग कुण्ड है और उसमें सदा स्नान करते रहना ही मनुष्य का एक मात्र कर्तव्य है दुराचार और व्यभिचार का अभिनय है, मानों उनकी दृष्टि में इस गृहस्थ जीवन में सदाचार का उपदेश देना भी एक भयानक अपराध या पाप है। उन महान् पुरुषोंको सदाचार और शांतरस युक्त गायनों से

१ जैसे अजातशत्रु एवं जनकादि

मानों इतना भय मालुम होता है जितना कि काम को शंकर से। कितने खेद की बात है कि इन विषय लोलुप पुरुषों को यह भी सुध नहीं है कि सदाचार से हीन गृहस्थ एक मुर्दे के सदृश है। सदाचार से हीन गृहस्थ दुख का केन्द्र है। सदाचार बिना धर्म नहीं है सदाचार बिना कर्म नहीं है सदाचार बिना ज्ञान नहीं है सदाचार बिना भक्ति योग कुछ भी नहीं है। जब पूर्वोक्त कुछ भी नहो तो फिर मनुष्य को शांति ही कहां? शांति बिना सुख कहां अशान्तास्य कुतः सुखं। फिर न जाने अश्लील के मजिस्ट्रेट संसार से सदाचार और शांति को चौपट करने के लिये क्यों उतरे हुये हैं? इनको यह भी मालूम नहीं कि सदाचार से भ्रष्ट पुरुष [1]बन में भी जायगा तो वहां भी दुराचार ही फैलायगा जैसे आजकल के सैकड़ो साधु महात्माओं से विदित होरहा है। जङ्गल में जाना भी जभी शुभ है जब अपनी विषयों की आग को सदाचार के जल से गृहस्थ में ही बुझा लिया जाय। ऐसे ही सन्यासी महात्मा सन्यास लेकर राष्ट्र, समाज, जाति में से दुराचार की अग्नि को बुझाया करते हैं। तभी तो पहिले महापुरुष ग्राम २ गली २ में घूम कर विषयाग्नि को बुझाया करते थे

---

१ 'वनेपिदोषा प्रभवन्ति रागीणां'। यदि रागी पुरुष बन में जायगे तो वहां भी कालिमा ही लगायेंगे, जैसे आजकल अधिकतर देखने में आता।

जिससे समाज सदाचारी बनकर सच्चे सन्यासी का परिचय दे सके थे, जो सदाचार के प्रचारकों को वन में जाने का कहते हैं ३ॐ की समझ में उनको एक प्रकार के दुराचार का उन्माद होगया है। परमात्मा उनको सदाचार का अरणामृत देकर पवित्र बनावें।

उप संहार

३ॐ पूर्वोक्त मात्र कथन का यही सारांश है कि वसन्त एवं होली में शास्त्रानुसार अश्लील बोलने का अधिकार नहीं है। अपितु उस समय अश्लीलता एवं बुरी आदतों का मिटाना ही शास्त्र सम्मत है। अब ३ॐ उपसंहार में पाठकों को यह दिखाता है कि मनुष्य होने से भी किसी समय में भी अश्लील बोलने का अधिकार नहीं है क्योंकि, मनुष्य को वैदिक परिभाषा में [1]यज्ञस्वरूप ही कहा है। प्रजा को यज्ञ से बनी हुई कहा है। गीता कहती है कि इस [2]प्रजा का सृजन यज्ञ सहित ही हुवा है अतः यह प्रजा यज्ञस्वरूप है। इसका एक एक प्राणी यज्ञ की प्रतिमूर्ति है इसे प्राणी

१ "यज्ञं वेद पुरुष" छान्दोग्यउ २ 'सहयज्ञ प्रजासृष्ट्वा' गीता

का '१प्रथम चौबीस वर्ष का आयुष्य प्रातः सयन और दूसरा चौवालीस वर्ष का आयुष्य मध्याह्न सयन तैसे ही तीसरा अड़तालीस वर्ष का आयुष्य सायं सयन होता है। यह मनुष्य जीवन रूप यज्ञ एक सौ सोलह वर्ष में समाप्त होता है जब यह यज्ञस्वरूप प्रजा अयज्ञ यज्ञ रहित हो जाती है, तभी इसका पतन होजाता है। गीता के अनुसार २यज्ञ से विरुद्ध जो कुछ भी यह प्रजा करती है वह मात्र बन्धन रूप या पतन रूप होता है इस बन्धन और पतन से बचने के लिये प्राणी मात्र को कोई न कोई यज्ञ अवश्यमेव करना चाहिये। यज्ञ का अर्थ केवल होम करना ही मात्र नहीं है। यज्ञ शब्द मनुष्य के पूर्ण पवित्र जीवन का द्योतक है जिसमें इसका बोलना चालना, उठना, बैठना प्राण (स्वांस) तक लेना भी यज्ञ स्वरूप होजाता है। अर्जुन का युद्ध जैसा कर्म भी यज्ञरूप होगया था। वेदों और शास्त्रों में नाना तरह के यज्ञ आते हैं जैसे "राष्ट्रं वैर यज्ञ" यह राष्ट्र ही यज्ञ स्वरूप है इसमें सेवारूप होम करो अर्थात् इससे गुलामी की मैल धोकर स्वतन्त्र यज्ञरूप बनाओ "नरयज्ञ अतिथि पूजनं" अतिथियों

१ इसका विस्तृत वर्णन छान्दोग्य उपनिषद् अध्याय ३ खण्ड १६ में देखो २' यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोयं कर्म बन्धनः' यज्ञ से भिन्न मात्र कर्म बन्धन के लिये ही होते हैं।

की सेवा ही यज्ञ है, इसमें ही भजन करो अर्थात् जो तुम्हारे अतिथी आवे उनका सत्कार कर कहो कि यह तुम्हारा घर है। 'स्वाध्याय ज्ञान यज्ञश्च' पढ़ना और उसका ज्ञान करना भी यज्ञ है, पढ़ने और उसके मनन में तत्पर होजावो। जाति सेवा समाज सेवादि अनेक यज्ञ शास्त्र में आते हैं जिनका सेवन करके मनुष्य का स्वरूप परमात्मा में मिल जाता है पर यह सेवा आत्मारूप से होनी चाहिये। ऐसी ही सेवा के लिये भर्तृजी ने कहा है कि "सेवा धर्म अति गहनो, योगीनां मुप गम्य" इन मात्र यज्ञों का मूल कारण यज्ञ सदाचार पवित्र जीवन ही है जिसके बिना पूर्वोक्त मात्र यज्ञ निष्फल हो जाया करते हैं। जो मनुष्य इस वैदिक यज्ञ स्वरूप मनुष्य जीवन को सदाचार भ्रष्ट बनाते हैं मानों वह यज्ञशाला में मांस का होम करते हैं जो मनुष्य इस मनुष्य के मुखरूप चमस ब्रह्म-हस्त श्रुवे में अश्लील शब्द धर कर बोलते हैं वह तो मानो साक्षात् परमात्मारूप यज्ञ के मुख में ही गन्धश होम रहे हैं। चाहे कुछ भी क्यों न हो, वेद, उपनिषद्, गीता के अनुसार मनुष्य को कभी भी अश्लील बोलने का अधिकार नहीं है क्योंकि वे इस मनुष्यरूप पुरुष या प्रजा को यज्ञ स्वरूप मानते हैं जैसे यज्ञ में सदा ही पवित्रता सदाचार की आवश्यकता हुवा करती है वैसे ही मनुष्य जीवन को भी सदा पवित्र एवं सदाचारी रखने की आवश्यकता है। परमात्मा हमको ऐसा होने की सद्बुद्धि दे। ॐ

समाप्त